॥ श्रीमहावीरायनमः

हिन्दी पूजन सार्थ

संकलन कर्ता—

श्री राधामोहन जैन

मंत्री

श्री वर्द्धमान पब्लिक लायब्रेरी

धर्मपुरा, देहली ।

१९६८

प्रथम बार] [मूल्य ९० पैसे

गृहस्थ के छः कर्म

(१) देव पूजा–श्री जिनेन्द्र देव की भक्ति करना, (२) गुरु भक्ति–गुरु की सेवा करना, (३) स्वाध्याय–नित्य शास्त्र पढ़ना, (४) तप–प्रति दिन सामायिक करना, (५) सयम–नियम आदि लेकर इन्द्रिय दमन करना, (६) दान–लक्ष्मी को आहार, औषधि विद्या, अभय दान में तथा परोपकार में लगाना और दान करके भोजन करना।

❀ स्वाध्याय आत्म कल्याण का साधन है।

❀ स्वाध्याय परम तप है।

❀ स्वाध्याय से श्रद्धा, श्रद्धा से ज्ञान और ज्ञान से चरित्र में निर्मलता आती है।

❀ स्वाध्याय नियम पूर्वक कीजिये।

दो शब्द ।

गृहस्थ का मुख्य कर्त्तव्य श्री जिनेन्द्रदेव की पूजा करना तथा पात्र-दान देना आदि षट् कर्म हैं । इसके बिना श्रावक धर्म की शोभा नहीं है ।

जिन बिम्ब के दर्शन से निधत्त और निकाचित रूप भी मिथ्यात्वादि कर्म कलाप का क्षय देखा जाता है। जिससे जिन बिम्ब का दर्शन प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण होता है कहा भी है—

दर्शनेन जिनेन्द्राणां पाप संघात कुंजरम् ।
शतधा भेदमायाति गिरिर्वज्र हतोयथा ।।

षट खंडागम १-९-९-२२

जिनेन्द्रों के दर्शन से पाप सघात रूपी कु जर के सौ टुकड़े हो जाते है। जिस प्रकार वज्र के आघात से पर्वत के सौ टुकड़े हो जाते हैं ।

जिनेन्द्र भगवान् की पूजा विवेकी श्रावक को अनेक प्रकार के दु.खो से छुटकारा दिलाती है और सम्यक्त्व प्राप्त कराकर मोक्ष का पात्र बनाती है ।

ज्योतिष शास्त्र में धर्म स्थान को ही भाग्य स्थान कहा है। अतः सिद्ध होता है कि धर्माचरण में ही भाग्य की समुचित सिद्धि प्राप्त होकर दुःख का निवारण होता है ।

आज कल दिन-प्रति दिन विशेषकर विद्यार्थी वर्ग जिनेन्द्र दर्शन और देव पूजन से दूर होते जा रहे हैं । प्राचीन समय में जहाँ सस्कृत पूजन कण्ठस्थ होती थी और जिनको पढ़ते हुए मनुष्य गद्गद् हो जाता था, वहा आज काल के प्रभाव से और

धार्मिक शिक्षा के अभाव के कारण हिन्दी भाषा की सरल पूजा भी कुछ सज्जन नही समझ सकते।

अतः जब तक हम जो पूजा पढ़ते है, उनके शुद्ध और सरल अर्थ नहीं समझेंगे, तब तक हमें वास्तविक विशेष लाभ नही हो सकता। मेरा अनुभव है कि बहुत से सज्जन वर्षों से पूजन करते हैं और उनको नित्य पूजाये कण्ठस्थ भी याद हैं, तब भी वे पूजन का सही अर्थ नही कर सकते।

बहुत से धर्म बन्धुओं ने ऐसी पुस्तक के लिए कहा विशेषकर श्री नेमचन्द जी (२३५१, धर्मपुरा निवासी) ने एक पुस्तक इस प्रकार की दिखाई जिसमें हिन्दी पूजाओ के अर्थ दिए हुए थे, परन्तु वह पुरानी छपी थी और जिसका मिलना भी दुर्लभ है, इसी पुस्तक की सहायता से और भा० दि० जैन परिषद की छपी पुस्तक 'भाषा नित्य पूजन सार्थ' अनुवादक 'भुवनेन्द्र विश्व' की सहायता से यह पुस्तक छपी है। इस पुस्तक की अन्तिम दो पूजनों के अर्थ प० पारसदासजी पालम वालों ने अपना अमूल्य समय देकर किया है, उनके हम आभारी हैं।

इस प्रयोजन को दृष्टि में रखते हुए इस पुस्तक को सरल भाषा में छपवाने की आवश्यकता समझी है। यदि समाज इससे कुछ लाभ उठाएगी तो मै अपना सौभाग्य समझूंगा।

मैं अपने धर्म मित्र श्री प्रेमचन्दजी जैन (जैना वाच कम्पनी), श्री श्रीमन्दरदासजी (दास एण्ड कम्पनी) बिजली वाले, प०सुमेर-चन्दजी साहित्यरत्न, न्यायतीर्थ, शास्त्री व प० श्यामलालजी ला०पृथ्वीसिहजी और सब सज्जनों को तथा श्री मनोहरलालजी जैन प्रेस वालों को जिन्होने इस पुस्तक के छपने मे सहायता दी है, इन सबको बहुत बहुत धन्यवाद देता हूँ।

राधामोन

अभिषेक

स्नान करने को अभिषेक कहते हैं। श्री अर्हंतदेव की प्रतिमा का अभिषेक करना, पूजन विधान का प्रथम अंग है। बिना अभिषेक किये द्रव्य पूजा का आरम्भ नहीं होता। अतः पूजा आरंभ करने से पहिले अभिषेक आवश्यकीय हैं। समझने के लिए पहिले हम उसका भावार्थ दे रहे हैं। इसके पश्चात् पृष्ठ ११ और १३ पर दो पाठ दिये है। उन पाठों को बोलते हुए अभिषेक किया जाता है।

(१) भावार्थ—तीर्थंकर भगवान जिसके गर्भ में आते हैं उनके यहाँ छह मास पहिले से रत्नो की वर्षा आरम्भ होती है और जन्म तक होती रहती है। इन्द्र अपने अवधिज्ञान से यह समाचार जान लेता है और कुवेर को नगरी की रचना के लिए भेजता है कुवेर वहां आकर अत्यन्त शोभायमान वन, उपवन युक्त नगरी की रचना करता है। उस नगरी को देखकर स्त्री-पुरुष बहुत प्रसन्न होते हैं। देवियां माताकी सेवा करती है। रात्रि के पिछले भाग मे माता १६ स्वप्न देखती हैं। १ ऐरावत हाथी, २ बैल, ३ सिंह, ४ स्नान करती हुई लक्ष्मी, ५ दो माला, ६ सूर्य, ७ चन्द्रमा, ८ दो मछली, ९ स्वर्ण कलश, १० तालाब, ११ समुद्र, १२ सिंहासन, १३ विमान, १४ नागेन्द्र भवन, १५ रत्न राशि, १६ निर्धूम अग्नि। सवेरे होते ही माता अपनी नित्य क्रिया से निबट कर अपने पति के पास जाती है और अपने स्वप्नों का फल पूछती है राजा स्वप्नों का फल बतलाते हैं कि तुम्हारे गर्भ से त्रिभुवनपति तीर्थंकर पुत्र का जन्म होगा। ऐसा जानकर माता और पिता आनन्दित होते हैं, इसप्रकार ९ महीना सुखपूर्वक व्यतीत करते हैं।

(२) भावार्थ—मति श्रुति अवधि तीनों ज्ञान सहित भगवान का जन्म होते ही तीनो लोकों में आनन्द छा जाता है। इन्द्र का आसन कम्पायमान होने से उसे ज्ञात हो जाता है कि भगवान् का जन्म हो गया, कुबेर सपरिवार ऐरावत हाथी पर बैठ उस नगरी की तीन प्रदक्षिणा देता है। इन्द्राणी मायामयी बालक रख भगवान को उठा लाती है। इन्द्र भगवान को देखकर तृप्त नही हो पाता, तब एक हजार नेत्रो द्वारा दर्शन करता है। सौधर्म इन्द्र गोद में लेता है, ईशान इन्द्र छत्र लगाता है, तीसरे और चौथे स्वर्ग के इन्द्र चमर ढोरते हैं, शेष इन्द्र जय जयकार करते है। इसके बाद भगवान को ऐरावत हाथी पर आसीन कर मेरु पर्वत पर ले जाकर वहां पांडुक शिला के ऊपर रत्न जड़ित सिंहासन पर विराजमान करते हैं। अनेक प्रकार के दुन्दुभि आदि बाजे बजते हैं। इन्द्राणियाँ सब मिलकर मंगल गान करती हैं। देवियां नृत्य करती हैं, अन्य देव हाथो हाथ क्षीर सागर से जल भर कर लाते हैं और सौधर्म तथा ईशान इन्द्र भगवान का अभिषेक करते हैं। इसके बाद भगवान को वस्त्र आभूषण पहिनाकर आनन्द उत्सव से वापिस लाते हैं। इन्द्र भगवान को माता की गोद मे देकर कुबेर को वहाँ नियुक्त करता है और आप स्वर्ग को वापिस चला जाता है।

इस प्रकार दोनो कल्याणक बोलते हुए भगवान का प्रक्षाल करें। प्रक्षाल से निवृत्त हो धुली हुई सामग्री आदि से भगवान का पूजन आदि एकाग्र चित्त होकर करे।

❀ पूजन ❀

नियमत: ससारी प्राणी प्रत्येक क्षण अपने मन, वचन, काय की प्रवृति के अनुसार शुभ या अशुभ कर्मों का बंध करते रहते है। ऐसी दशा में पूजन करने में जितना समय लगता है मन, वचन, काय की पवित्रता के कारण शुभ कर्मों का बध होता है, जिसका फल सुख के रूप में प्राप्त होता है।

भगवान के गुण-स्मरण और गुण गान से विनय गुण का सचार होता है तथा पूजन के द्वारा पुण्य कर्म की प्राप्नि होने से साँसारिक सुख प्राप्त हो जाता है। शात्मा में पवित्रता आती है तथा आत्मा की वास्तविकता का ज्ञान होकर संसार से छूटने व अपनी शुद्धावस्था (परमात्म-दशा) को प्राप्त करने का भाव जाग्रत हो जाता है। परमात्म दशा की प्राप्ति ससारी जीवों का प्रधान लक्ष्य है। बह दशा अपने पुरुषार्थ से स्वयं प्राप्त की जाती है, परन्तु भगवान की पूजा उसमें एक व्यवहारिक निमित्त अवश्य है।

इस बात को अच्छी तरह समझ कर तथा उच्च उद्देश्य रखकर ही भगवान की पूजा करनी चाहिये। सांसारिक सुख तो साधारण वस्तु है, वह तो पुण्य कर्म से अनायास ही प्राप्त हो जाता है। अत: सांसारिक सुख की भावना से वीतराग भगवान की पूजा करना ठीक नही है। पूजा, भक्ति करते समय कोई इच्छा न करनी चाहिए। क्योंकि सुख, सम्पत्ति दायक पुण्य कर्म का बन्ध बिना कुछ इच्छा किये भी अवश्य होगा।

इस प्रकार बड़ी शान्ति और श्रद्धा से भगवान की पूजा करे पूजन में भावना बड़ी ही निर्मल एव भक्ति से भरी हो, पूजन, पाठ को धीरे २ मीठे स्वर मे पढ़ना चाहिए। पूजन करते समय जिनेन्द्र का ध्यान करता हुआ ही पूजन करे। पूजन करते समय ध्यान न बटे तो ऐसे पूजन के फल से आत्मा बचित नही रहती।

पूजन का महत्व

१. जिनेन्द्र पूजन ग्रहस्थों के लिए परम आनन्द को देने वाली है।
२. जिनेन्द्र पूजन से सुख एवं सुकृति की प्राप्ति होती है।
३. "पूजन कर्म" से अधिक भाव जुड़ते हैं।
४. जिनेन्द्र पूजन से आत्मा में एक अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है।
५. पूजन कर्म सम्यक्त्व प्राप्ति का कारण है।
६. जिनेन्द्र पूजन से सद्‌गति का बन्ध होता है।
७. शुद्ध मन वचन काय से की हुई भक्ति अपूर्व फल को देती है।
८. जिनेन्द्र भक्ति से विलक्षण शक्ति प्रगट हो जाती है।
९. जिनेन्द्र पूजन से शुभ भाव होते हैं।
१०. आत्मा के शुभ भाव ही पुण्य बन्ध में मुख्य हैं।

विषय सूची

श्रावक के योग्य कुछ स्थूल नियम

(१) मांस (२) मदिरा (३) मधु, अंडा (४) पीपल के (५) गूलर के (६) अंजीर के (७) पाकर के फल तथा (८) अनजाने फल नहीं खाने चाहिए ।

(६) जूआ नहीं खेलना चाहिए ।

(१०) चोरी नहीं करनी चाहिए ।

(११) शिकार नहीं खेलना चाहिए ।

(१२) वेश्या तथा परस्त्री सेवन का व्यसन नहीं करना चाहिए ।

(१३) पानी दोहरे कपड़े से छानकर शुद्ध पीना चाहिए ।

(१४) रात्रि के भोजन का त्याग करना चाहिए ।

(१५) चमड़े की कोई वस्तु जूता आदि प्रयोग में नहीं लानी चाहिए ।

(१६) परिग्रह की मर्यादा रखनी चाहिए ।

(१७) सत्य हितकारी वचन बोलना चाहिए ।

(१८) बड़ों का आदर करना चाहिए ।

(१६) जहाँ तक बन सके हिंसा से बचना चाहिए ।

(२०) नित्य देव दर्शन पूजन करना चाहिए ।

णमोकार मंत्र

णमो अरहन्ताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्व साहूणं ॥

अर्थ—णमो अरहन्ताणं—इसमें दो पद हैं पहिला णमो दूसरा अरहन्ताणं णमो का अर्थ है नमस्कार, अरहन्ताणं का अर्थ है अर्हन्तोंके लिये दोनो पदोंका अर्थ है अरहन्तोके लिये नमस्कार हो।

णमो सिद्धाणं—इसमें भी दो पद हैं पहला णमो दूसरा सिद्धाणं; णमो का अर्थ है नमस्कार सिद्धाणं का अर्थ है सिद्धोके लिये दोनों पदों का अर्थ है सिद्धो के लिये नमस्कार हो।

णमो आइरियाणं—इसमें भी दो पद हैं पहिला णमो दूसरा आइरियाणं। णमोका अर्थ है नमस्कार हो आइरियाणं का अर्थ है आचार्य्यन के लिये दोनों पदों का अर्थ है आचार्य्यन के लिये नमस्कार हो।

णमो उवज्झायाणं—इसमें दो पद हैं पहिला णमो दूसरा उवज्झायाणं णमो का अर्थ है नमस्कार हो उवज्झायाणका अर्थ है उपाध्यायनके लिये दोनों पदोका अर्थ है उपाध्यायन के लिये नमस्कार हो।

णमो लोए सव्वसाहूणं—इसमें तीन पद हैं पहिला णमो दूसरा लोए तीसरा सव्वसाहूणं णमो का अर्थ है नमस्कार हो लोए का अर्थ है लोक में विचरने वाले सव्वसाहूणं का अर्थ है सब साधुओं के लिये तीनों पदो का मिलाकर अर्थ हुआ लोक में विचरने वाले सर्व साधुओं के लिए नमस्कार हो।

विधि---श्री मन्दिरजी वेदीगृहमे (जिस स्थानमें श्री नेजिन्द्र देवके प्रतिबिम्ब बिराजमान होनेकी वेदी हो) प्रवेश करनेके पहिले "ॐ जय जय जय निःसहि निःसहि नि.सहि" इस प्रकार उच्चारण करके श्रीप्रतिमाजो के सन्मुख जाते ही दोनो हाथ जोड़कर मुख से इस प्रकार कहे कि जयवन्त हो जयवन्त हो श्री जी आपके चरणार्विदको मेरा मन वचन काय कर बारम्बार नमस्कार हो-पश्चात् उपर्युक्त महामन्त्र का नौ बार पाठ करे।

दर्शन पाठ

दर्शनं देव देवस्य, दर्शनं पापनाशनं।
दर्शनं स्वर्ग सोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनं ॥१॥

अर्थात् देवन के देव का दर्शन पाप का नाश करने वाला, स्वर्ग जाने में सीढ़ी के समान तथा मोक्षका साधन है।

दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां बन्दनेन च।
न चिरं तिष्ठते पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम् ॥२॥

अर्थात् श्री जिनेन्द्र देव के दर्शन करने से, और साधुओं की वन्दना करनेसे, पाप बहुत दिनो तक नही ठहरते, जैसे छिद्र वाले हाथमें पानी नही ठहरता (धीरे २ चू जाता है इसी तरह पाप धीरे धीरे दूर होने लगते है)।

वीतराग मुखं दृष्ट्वा, पद्मरागसम प्रभम्।
जन्म जन्म कृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति ॥३॥

अर्थात् पद्मरागके समान शोभनीक श्री वीतराग भगवान का मुख देखकर अनेक जन्मों के किये हुए पाप नाश हो जाते हैं।

दर्शनं जिन सूर्यस्य, संसारध्वान्त नाशनम् ।
बोधनं चित्त पद्मस्य, समस्तार्थ प्रकाशनम् ॥४॥

अर्थात् सूर्य्य के समान श्री जिनेन्द्रदेव के दर्शन करने से सांसारिक अंधकार नष्ट होता है चित्तरूपी कमल फूलता है और सर्व पदार्थ प्रकाश में आते हैं अर्थात् जाने जाते हैं ।

दर्शनं जिन चंद्रस्य, सधर्म्मामृत वर्षणं ।
जन्मदाह विनाशाय, वर्धनं सुख वारिधेः ॥५॥

अर्थात् चन्द्रमा के समान श्री जिनेन्द्रदेव का दर्शन करने से सत्य धर्म्मरूपी अमृत की वर्षा होती हैं, जन्म जन्म का दाह ठंडा होता है और सुखरूपी समुद्रकी वृद्धि होती है ।

जीवादि तत्वं प्रतिपादकाय, सम्यक्त्व मुख्याष्ट गुणार्णवाय ।
प्रशान्तरूपाय दिगम्बराय, देवाधि देवाय नमो जिनाय ॥६

अर्थात् श्री देवाधिदेव जिनेन्द्र देव को नमस्कार हो, जो जीव आदि सात तत्वों के बताने वाले, सम्यक्त आदि आठ गुणों के समुद्र, शान्तरूप तथा दिगम्बररूप है ।

चिदानंदैकरूपाय, जिनाय परमात्मने ।
परमात्मा प्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः ॥७॥

अर्थात् श्री सिद्धात्मा को नित्य नमस्कार हो जो ज्ञानानन्द रूप हैं अष्ट कर्मोंको जीतनेवाले, परमात्म स्वरूप तथा परमतत्व परमात्मा के प्रकाश करने वाले है ।

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम ।
तस्मात्कारुण्य भावेन, रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥८॥

अर्थात् हे जिनेश्वर आपही मुझे शरण में रखने वाले हो और कोई शरणमें रखने योग्य नहीं है। इसलिये कृपा पूर्वक मेरी संसार के पतन से रक्षा कीजिये।

नहि त्राता नहि त्राता, नहि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात्परो देवो, न भूतो न भविष्यति ॥९॥

अर्थात् तीन लोकके बीच अपना कोई रक्षक नही है यदि कोई है तो हे वीतराग देव आपही हैं क्योंकि आपके समान न तो कोई देव हुआ और न होगा।

जिनेभक्तिर्जिनेभक्ति, र्जिनेभक्तिर्दिने दिने।
सदामेऽस्तु सदामेऽस्तु, सदामेऽस्तु भवेभवे ॥१०॥

अर्थात् मैं यह आकांक्षा करता हू कि जिनेन्द्र भगवान में मेरी भक्ति दिन दिन और प्रत्येक भव में सदा बनी रहै।

जिनधर्म विनिर्मुक्त, मा भवेच्चक्रवर्त्यपि-
स्याच्चेटोऽपिदरिद्रोऽपि,जिनधर्मानुवासितः ॥११॥

अर्थात् जिन धर्मरहित चक्रवर्ति भी अच्छा नहीं जिन धर्म का धारी दास तथा दरिद्री भी हो तो अच्छा है।

जन्म जन्म कृतं पापं, जन्मकोटि मुपार्जितम्।
जन्ममृत्युर्जरारोगं, हन्यते जिनदर्शनात् ॥१२॥

अर्थात् जिनेन्द्रके दर्शन से किरोडों जन्मोके किये हुवे पाप तथा जन्म मृत्यु जरा रूपी तीव्र रोग अवश्य २ नष्ट हो जाते हैं।

अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य।
देवत्वदीयचरणांबुजवीक्षणेन ॥

अद्य त्रिलोकतिलकप्रति-भासते मे ।
संसार वारिधिरयं चुलकप्रमाणम् ॥१३।

अर्थात् हे देवाधिदेव ! आपके कल्याणकार चरण कमलों के दर्शन से मेरे दोनों नेत्र आज सफल हुये। हे तीनों लोकों के शृङ्गार भूत तेजस्वी लोकोत्तर पुरुषोत्तम आपके प्रतापसे मेरा संसार रूपी समुद्र हाथ में लिए पानी के समान प्रतीत होता है, आपके प्रताप से मैं सहज ही ससार समुद्र से पार हो जाऊंगा ।

❀ स्तुति ❀

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानंद रसलीन ।
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरि रज रहस विहीन ॥१

अर्थ—जो समस्त जानने योग्य पदार्थ हैं उनके जानने वाले हैं तो भी आत्मीक रस में लीन है तथा जो चार घातिया कर्मो से रहित हैं ऐसे जिनेन्द्र भगवान सदा जयवन्त रहो।

जय वीतराग विज्ञानपूर,
जय मोह तिमिरको हरन सूर ।
। जय ज्ञान अनन्तानन्त धार,
दृग सुख वीरज मंडित अपार ॥ २ ॥

अर्थ—हे जिनेन्द्र ! वीतराग विज्ञानता के पुन्ज मोह रूपी अंधकार के नाश करने को सूर्य अनन्तानन्त ज्ञान के धारक अनंत दर्शन अनन्त सुख अनन्त वीर्य शोभायमान आप जयवन्त रहो।

जय परम शान्ति मुद्रा समेत,
भविजन को निज अनुभूति हेत ।

भवि भागन वश जोगे वशाय,

तुम धुनिहै सुनि विभ्रम नशाय ॥३॥

अर्थ—हे जिनेन्द्र ! परम शांति स्वरूप सहित भव्य जीवों को आत्म अनुभव के कारण आप जयवन्त रहो तथा भव्य जीवों के पुण्यके उदयसे तथा वचन योग द्वारा प्रगट हुई आपकी दिव्य ध्वनिके सुनने से अनेक प्रकारके भ्रम दूर होते हैं।

तुम गुण चिन्तत निजपर विवेक,

प्रगटै विघट आपद अनेक।

तुम जग भूषण दूषण वियुक्त,

सब महिमा युक्त विकल्प मुक्त ॥४

अर्थ—हे भगवान् ! आपके गुणों के चिन्तवन से आत्मा और पुद्गल आदि का विचार प्रगट होता है और अनेक प्रकार आपदायें नाश होती हैं आप जगत के भूषण हो तथा दूषण और विकल्पों से रहित हो सर्व प्रकार की महिमा सहित हो।

अविरुद्ध शुद्ध चेतन स्वरूप,

परमात्म परम पावन अनूप।

शुभ अशुभ विभाव अभाव कीन,

स्वाभाविक परणतिमय अछीन ॥ ५

अर्थ—हे जिनेन्द्र ! आप विपरीतता रहित शुद्ध आत्म स्वरूप हो, तथा परमात्मा हो, परम पवित्र हो, उपमा रहित हो, तथा हे जिनेन्द्र! आपने शुभ अशुभ कर्म्मजनित उपाधिरूप परिणामों का नाश किया है और स्वाभाविक परिणति में अच्छी तरह लीन हो।

अष्टादश दोष विमुक्त धीर,
स्वचतुष्टयमय राजत गम्भीर।
मुनि गणधरादि सेवत महंत,
नव केवल लब्धि रमा धरन्त ॥ ६

अर्थ—हे धीर ! आप अठारह दोषों से रहित हो तथा स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभाव करि अत्यन्त शोभायमान हो तथा गण-धरादि मुनियोंसे सेवित नव केवल लब्धिरूप लक्ष्मी के धारक हो।

तुम शासन सेय अमेय जीव,
शिव गये जाहि जे हैं सदीव।
भवसागर में दुख छारिवार,
तारनको औरन आप टार ॥ ७

अर्थ—हे जिनेन्द्र! आपकी आज्ञा को पालन कर हमेशा अनंते जीव मोक्ष गये हैं तथा जाते हैं और जायेगे ससार रूपी समुद्र में दुखरूपी खारी जल है उससे पार उतारने के लिये आपको छोड़ कर और कोई समर्थ नही है।

यह लखि निज दुख गद हरण काज।
तुम हो निमित्त कारण इलाज ॥
जाने ताते मैं शरण आय।
उचरों निज दुख जो चिर लहाय ॥८

अर्थ—हे जिनेन्द्र ! इस बात को विचार कर कि मेरे दुखरूपी रोग को दूर करने के लिये आप ही निमित्त कारण औषधि हो ऐसा जानकर मैं आपको शरण लेता हूं और मैने जो बहुत काल से दुख भोगे हैं उन्हें कहता हूं।

मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप ।
अपनाये विधि फल पुण्य पाप ।
निज को पर को करता पिछान ।
परमें अनिष्टता इष्ट मान ॥९॥

अर्थ—हे जिनेन्द्र ! मैं आत्माको भूलकर स्वयं ही भ्रम्या और कर्मों के फल पुण्य पापको अपना स्वरूप जाना और आत्मा को पुद्गल आदि का कर्ता पहिचाना और पुद्गल आदि में इष्ट अनिष्ट बुद्धि धारण की ।

आकुलित भयो अज्ञान धारि ।
ज्यों मृगमृग तृष्णा जानि वारि ॥
तन परिणतमें आपौ चितारि ।
कबहूँ न अनुभयो स्वपद सार ॥१०॥

अर्थ—हे जिनेन्द्र ! जैसे हिरण मृग तृष्णा को जल समझ कर तृष्णा से अज्ञान धारण कर आकुलित होता है वैसे ही अज्ञान से दुख पाया शरीर की परिणति में आत्म स्वरूप मानकर कभी भी अपने को इष्ट पद का अनुभव न किया ।

तुमको जाने बिन जो कलेश ।
पाये सो तुम जानत जिनेश ॥
पशु नारक नर सुरगति मंझार ।
भव धरि २ मर्यो अनंतवार ॥११

अर्थ—हे जिनेश ! आपको जाने बिना जो दुख पाये हैं वे सब आप जानते हो पशु, नारकी, मनुष्य, देव का शरीर धारण कर अनन्त वार मरा ।

अब काल लब्धि बलतें दयाल ।
तुम दर्शन पाय भयो खुशाल ॥
मन शांति भयौ मिट सकल द्वन्द ।
चाख्यो स्वातमरस दुख निकंद ॥१२॥

अर्थ—हे दयाल ! अब काल लब्धिके बलसे आपका दर्शन पाकर प्रसन्न हुआ। और सर्व प्रकारकी चिन्तायें दूर होकर मन शांत हुआ। तथा दुखोका नाश करने वाला आत्मरसका अनुभव किया।

तातें अब ऐसी करहु नाथ ।
बिछुरै न कभी तुम चरण साथ ॥
तुम गुण गणको नहिं छेव देव ।
जगतारनको तुम विरद एव ॥१३

अर्थ—इसलिये हे जिनेन्द्र ! अब ऐसा करो जिससे कभी भी आपके चरणों का साथ नही छूटे तथा आपके गुणो के समूह की सीमा नहीं है संसारसे पार करने को आप ही समर्थ हो।

आतमके अहित विषय कषाय ।
इनमें मेरी परिणति न जाय ॥
मैं रहों आपमें आप लीन ।
सो करो होंउ ज्यों निजाधीन ॥१४

अर्थ—हे जिनेन्द्र ! आत्माको दुख देने वाले विषय कषायो में मेरा भाव न जावे। ऐसा कीजिये जिससे मै आत्म स्वरूप में लीन रहूं तथा जिससे स्वाधीन हो जाऊं ॥ १४

मेरे न चाह कुछ और ईश ।
रत्नत्रय निधि दीजे मुनीश ॥
मुझ कारजके कारण सु आप ।
शिव करहु हरहु मम मोह ताप ॥१५

अर्थ—हे स्वामी मेरे और कुछ वाञ्छा नही है मुझे तो रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक चारित्र) रूपी निधि दीजिये हे मुनीश मेरे कार्य्य सिद्ध होनेमें आप ही कारण हो मेरा मोहरूपी दुख का नाशकर मोक्ष की प्राप्ति करो ॥१५

शशि शांतिकरण तप हरणहेत ।
स्वयमेव तथा तुम कुशल देत ॥
पीवत पीयूष ज्यों रोग जाय ।
त्यों तुम अनुभवतें भवनशाय ॥१६

अर्थ—हे जिनेन्द्र ! जैसे चन्द्रमा शांति करने और गर्मी के हरनेका कारण है तैसे ही आप भी स्वयमेव सुख देते हो और जैसे अमृतके पीनेसे रोग नाश होता है तैसे ही आपका स्वरूप चितवन करने से संसार भ्रमणका नाश होता है ॥१६

त्रिभुवन तिहुंकाल मंझार कोय ।
नहीं तुम बिन निज सुखदाय होय ॥
मो उर यह निश्चय भयो आज ।
दुख जलधि उतारन तुम जिहाज ॥१७

अर्थ—हे जिनेन्द्र ! तीन लोक और तीन कालोंमें आपके सिवाय और कोई सुख देने वाला नही है मेरे दिल मे आज अच्छी

तरहसे विश्वास हुआ कि दुख रूपी समुद्र से पार करने को आप ही जहाज हो ॥१७

तुम गुण गणमणि गणिपती,
गणंत न पावहिं पार ।
दौल स्वल्पमति किमि कहैं,
नमो त्रियोग संभार ॥१८

अर्थ—हे जिनेन्द्र ! आपके गुणोंके समूहरूपी रत्नोकी गिनती करते हुए गणधर महाराज भी पार नही पा सकते तो अल्प बुद्धि दौल किस तरह कह सकता है ॥ १८

❀ मंगल पाठ ❀

पणविवि पंच परमगुरु, गुरु जिन सासनो ।
सकलसिद्धदातार सु विघन विनासनो ॥
सारद अरु गुरु गौतम सुमति प्रकाशनो ।
मंगल कर चउ-सघहिं पाप पणासनो ॥
पासहिंपणासन गुणहिं गरुआ, दोष अष्टादश-रहिउ ।
धरिध्यान करमविनाश केवल,ज्ञान अविचल जिन लहिउ ।
प्रभु पञ्चकल्याणक विराजित, सकल सुर नर ध्यावहीं ।
त्रैलोकनाथ सु देव जिनवर, जगत मङ्गल गावहीं ॥१

गर्भ कल्याणक ।

जाके गरभकल्याणक धनपति आइयो।
अवधिज्ञान-परवान सु इंद्र पठाइयो॥
रुचि नव बारह जोजन, नयरि सुंहावनी।
कनकरयणमणिमंडित, मंदिर अति बनी॥
अति बनी पौरि पगार परिखा सुबन उपवन सोहए।
नर नारि सुन्दर चतुरभेष सु देख जनमन मोहए॥
त जनकगृह छहमास प्रथमहि रतनधारा वरसियो।
पुनि रुचिकवासिनि जननिसेवा करहि सब विधि हरसियो॥
सुरकुंजरसम कुंजर, धवल धुरंधरो।
केहरि-केशरशोभित, नख सिखसुन्दरो॥
कमलाकलस-न्हवन, दुइदाम सुहावनी।
रविससि मंडल मधुर, मीन जुग पावनी॥
पावनिकनक घट जुगम पूरन, कमलकलित सरोवरो।
कल्लोलमालाकुलितसागर, सिंहपीठ मनोहरो॥
रमणीक अमरविमान फणिपति-भुवन रवि छवि छाजई।
रुचि रतनराशि दिपंत, दहन सु तेजपुंज विराजई॥३
ये सखि सोलह सुपने सूती सयनही।
देखे माय मनोहर, पश्चिम रयनही॥
उठि प्रभात पिय पूछियो, अवधि प्रकाशियो।
त्रिभुवनपति सुत होसी, फल तिहुं भासियो॥

भासियो फल तिहिं चित दम्पति परम आनंदित भये ।
छहमास परि नव मास पुनि तहं, रैन दिन सुखसों गये ॥
गर्भावतार महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
भणि 'रूपचन्द' सुदेव जिनवर जगत मङ्गल गावहीं ॥ ४

जन्म कल्याणक

मतिश्रुत अवधि विराजित, जिन जब जनमियो ।
तिहुंलोक भयो छोभित, सुरगन भरमियो ॥
कल्पवासि घर घंट, अनाहद बज्जिया ।
ज्योतिष घर हरिनाद, सहज गल गज्जिया ॥
गज्जिया सहजहि संख भावन, भुवन सबद सुहावने ।
वितरनिलय पटुपटह बज्जहिं, कहत महिमा क्यों बने ॥
कंपित सुरासन अवधिबल जिन-जनम निहचै जानियो ।
धनराज तब गजराज माया-मयी निरमय आनियो ॥५

जोजन लाख गयंद, बदन सौ निरमये ।
बदन बदन वसुदंत, दंत सर संठये ॥
सरसर-सौ पनवीस, कमलिनी छाजहीं ।
कमलिनि कमलिनि कमल पचीस विराजहीं ॥
राजहीं कमलिनी कमलऽठोतर सौ मनोहर दल बने ।
दल दलहि अपछर नटहि नवरस, हाव भाव सुहावने ॥

मणि कनककिंकणि वर विचित्र, सु अमरमण्डप सोहये ।
घन घंट चंवर धुजा पताका, देखि त्रिभुवन मोहये ।।६।

तिहिं करि हरि चढि आयउ सुरपरिवारियो ।
पुरिहि प्रदच्छन दे त्रय, जिन जयकारियो ।।
गुप्त जाय जिन-जननिहिं, सुख निद्रा रची ।
मायामयि सिसु राखि तो जिन आन्यो सची ।।

आन्यो सची जिनरूप निरखत, नयन तृपति न हूजिये ।
तब परम हरषित हृदय हरिने सहस लोचन पूजिये* ।।
पुनि करि प्रणाम जु प्रथम इंद्र, उछंग धरि प्रभु लीनऊ ।
ईशान इंद्र सु चन्द्र छवि सिर, छत्र प्रभु के दीनऊ ।।७।

सनतकुमार माहेन्द्र, चमर दुई ढारहीं ।
सेस सक्र जयकार, सबद उच्चारहीं ।।
उच्छवसहित चतुरविधि, सुर हरषित भये ।
जोजन सहस निन्यानवे, गगन उलँघि गये ।।

लंघि गये सुरगिर जहां पाँडुक, वन विचित्र विराजहीं ।
पाँडुक शिला तहं अर्द्धचन्द्र समान, मणि छवि छाजहीं ।।
जोजन पचास विशाल दुगुणायाम, वसु ऊंची गनी ।
वर अष्ट-मङ्गल-कनक कलशनि सिंहपीठ सुहावनी ।।८।।

रचि मणिमंडप सोभित, मध्य सिंहासनो ।

---

* पूजिये अर्थात् पूरण किये—बनाये ।

थाप्यो पूरब मुख तहँ, प्रभु कमलासनो ॥
बाजहिं ताल मृदंग, वेणु वीणा घने ।
दुन्दुभि प्रमुख मधुर धुनि, अवर जु बाजने ॥
बाजने बाजहिं सची सब मिलि, धवल मङ्गल गावहीं ।
पुनि करहिं नृत्य सुरांगना सब, देव कौतुक धावहीं ॥
भरि छीरसागर जल जु हाथहिं, हाथ सुरगिरि ल्यावहीं
सौधर्म अरु ईशान इंद्र सु कलश ले प्रभु न्हावहीं ॥६

वदन उदर अवगाह, कलसगत जानिये ।
एक चार वसु जोजन, मान प्रमानिये ॥
सहस-अठोतर कलसा, प्रभुके सिर ढरइँ ।
पुनि सिंगार प्रमुख, आचार सवै करइँ ॥
करि प्रगट प्रभु महिमा महोच्छव, आनि पुनि मातहिं दये
धनपतिहिं सेवा राखि सुरपति, आप सुरलोकहिं गये
जनमाभिषेक महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
भणि 'रूपचन्द' सुदेव जिनवर जगत मङ्गल गावहीं ॥१

अपने मनमें अपनी आत्माका व दूसरों का बुरा विचारना हिंसा

भाषा नित्य पूजन सार्थ

देव शास्त्र गुरु पूजा

ॐ जय जय जय । नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोस्तु ।

अर्थ—हे जिनेन्द्र भगवन् ! आप जयवन्त होवो, जयवन्त होवो, जयवन्त होवो । आपके लिये हमारा नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो ।

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्व साहूणं ।।

अर्थ—मैं अरहन्तों के लिये नमस्कार करता हूं । मैं सिद्धो के लिये नमस्कार करता हूं । मै आचार्य परमेष्ठी को नमस्कार करता हूं । मैं उपाध्याय परमेष्ठी के लिये नमस्कार करता हूँ तथा लोकवर्ती सर्व साधुओ को नमस्कार करता हूँ ।

ॐ अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः ।

अर्थ—मैं अनादिकालीन इस मूलमंत्र को नमस्कार करता हूँ ।

(यहां पुष्पांजलि क्षेपण करना)

चत्तारि मंगलं—अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं । चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा । चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्धसरणं पव्वज्जामि, साहुसरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।

इस संसार में चार ही मंगल है । प्रथम तो अरहंत भगवान हैं। दूसरे सिद्ध परमेष्ठो मंगलरूप हैं । तीसरे साधु महाराज मगलकारक है और चौथे केवलो भगवान का कहा हुआ धर्म मंगलरूप है ।

इस लोक में चार पदार्थ हो सब से उत्तम है । प्रथम तो अरहंत परमेष्ठो सर्वोत्तम है । दूसरे समस्त कर्ममल से रहित सिद्ध भगवान ससार मे सब से उत्तम है । नोसरे साधु परमेष्ठी है । चौथे सर्वज्ञ रचित धर्म परम उत्तम है ।

सासारिक दुःख से बचने के लिये मै चार की शरण लेता हूं। अरहन्त को शरण लेता हूँ, सिद्ध की शरण लेता हूँ, साधु परमेष्ठी को शरण लेता हू तथा केवली भगवान से उपदिष्ट धर्म की शरण लेता हूँ ।

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा ।
ध्यायेत्पंचनमस्कार सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१॥

जाव यदि इस पच परमेष्ठो के नमस्कार-मन्त्र का ध्यान करे तो वह सब पापो से छूट जाता है । ध्यान करते समय वह चाहे पवित्र हो या अपवित्र हो, चाहे अच्छो जगह हो अथवा बुरी जगह हो ॥१॥

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यंतरे शुचिः ॥२॥

शरीर चाहे तो स्नानादि द्वारा पवित्र हो अथवा किसी अशुचि पदार्थ के स्पर्श से अपवित्र हो, इसके सिवाय सोती, जागता, उठतो, बैठतो, चलती आदि कोई भो दशा हो इन सभी दशाओं में जो पुरुष परमात्मा का स्मरण करता है वह उस समय

वाह्य और अभ्यन्तर से (शरीर से तथा मन से) पवित्र है ॥२॥

अपराजितमंत्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः ।
मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः ॥३॥

यह णमोकार मन्त्र अन्य किसी मन्त्र से प्रतिहत (खडित-रुका हुआ) नही हो सकता इसलिये यह मन्त्र अपराजित है (किसी ने पराजित नही है) और सब विघ्नो को हरने वाला है तथा सभी मगलो मे यह प्रधान मगल गाना गया है ॥३॥

एसो पंच णमोयारो सव्वपापपणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढम हवइ मंगलं ॥ ४ ॥

यह नमस्कार मन्त्र सर्व पाप कर्मो को नष्ट करने वाला है और सभी मंगलों मे मुख्य मंगल है ॥४॥

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः ।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम् ॥५॥

'अर्हं' ऐसे जो दो अक्षर है वे ब्रह्म अर्थात् अरहन्तके वाचक (कहने वाले) है, तथा परम इष्ट जो सिद्धचक्र है उसको उत्पन्न करने के लिये बीज के समान है, इसलिये 'अर्हं' को मै मन, वचन, काय से, सर्वदा नमस्कार करता हूँ ॥५॥

कर्माष्टकविनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम् ।
सम्यक्त्वादिगुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥६॥

आठ कर्मो से छूटे हुए तथा मोक्ष संपत्ति का घर और सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान, अगुरुलघु, अव्याबाध, अवगाहन, सूक्ष्म, वीर्य, इन आठ गुणों सहित सिद्ध समूह को मैं नमस्कार करता हूँ ॥६॥

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनीभूतपन्नगाः ।
विषो निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥७॥

जिनेन्द्र भगवान का स्तवन करने से शाकिनी, डाकिनी, भूत, पिशाच सर्प, सिंह, अग्नि आदि समस्त विघ्न दूर हो जाते हैं। बड़े हलाहल विष भी अपना असर त्याग देते हैं ॥७॥

(यहा पुष्पांजलि क्षेपण करना)

(यदि अवकाश हो तो यहाँ पर सहस्रनाम पढ़कर दश अर्घ देना चाहिये अन्यथा निम्नलिखित श्लोक पढ़कर एक अर्घ चढाना चाहिये)

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिननाथ महं यजे ॥

मै निर्मल अथवा उच्च मङ्गलगान (मंगलीक जिनेन्द्र स्तवन पूजनादि) के शब्दो से गुंजायमान इस जिनमन्दिर में जिनेन्द्रदेव का जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल तथा अर्घ के द्वारा पूजन करता हूँ ।

ॐ ह्रीं श्रीभगवज्जिनसहस्रनामभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

अनंत चतुष्टय तथा समवशरण, आठ प्रतिहार्य आदि लक्ष्मी से सहित जिनेन्द्र भगवान के एक हजार आठ नामों के लिये मैं अर्घ चढ़ाता हूँ ।

स्थापना

अडिल्ल छन्द

प्रथम देव अरहंत, सुश्रुत सिद्धान्त जू ।
गुरु निरग्रन्थ महन्त, मुकतिपुर पन्थ जू ॥
तीन रतन जगमांहि सु ये भवि ध्याइये ।
तिनकी भक्ति-प्रसाद परमपद पाइये ॥१॥

देव=भगवान् । अरहन्त=अरहन्त परमेष्ठी । सुश्रुत सिद्धान्त =धर्म शास्त्र । निरग्रन्थ=वाह्य और अभ्यन्तर परिग्रह रहित । महन्त=(महान) पूजने योग्य । भवि=भव्य । प्रसाद=प्रसन्नता । परमपद=उत्तम पद, परमेष्ठी पद और मोक्ष पद । मुकतिपुर= मोक्ष । पन्थ=मार्ग । रतन=रत्नो के समान श्रेष्ठ । जगमाहि= तीन लोक में ।

अर्थ—अरहन्त देव, सिद्धान्त शास्त्र और परिग्रह रहित गुरु पूजनीय है और ये ही मोक्ष के मार्ग हैं । ससार मे जो भव्य पुरुष इन तीन रत्नो का ध्यान करते है, वे देव, शास्त्र और गुरु की भक्ति के प्रसाद से उत्तम पद प्राप्त करते है ।

पूजों पद अरहन्तके, पूजों गुरु-पद सार ।
पूजों देवी सरस्वती, नित-प्रति अष्ट प्रकार ॥२॥

पद=चरण । सार=श्रेष्ठ । नित-प्रति=प्रति दिन । अष्ट प्रकार=जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य (चरु), दीप, धूप और फल (अर्घ्य) इन आठ द्रव्यो से पूजा की जाती है ।

अर्थ—इसलिये हे भगवन् ! देव, शास्त्र और गुरु की प्रति दिन आठो द्रव्यो से पूजन करता हूं ।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट्‌‌❋ (इति आह्वाननम्) ।

अर्थ—पच परमेष्ठी और चौवीस तीर्थकर स्वरूप देव शास्त्र गुरु ! यहाँ आइये ! आइये !! (यह आह्वान है) ।

❋ ये तीनो शब्द बीजाक्षर है, इनका विशेष अर्थ न होते हुए भी स्थापना आदि के मन्त्रो के साथ कहे जाते हैं ।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः * (इति स्थापनम्)।

अर्थ—पंच परमेष्ठी और तीर्थंकर स्वरूप देवशास्त्रगुरु, यहाँ विराजिये ! विराजिये !! (यह स्थापना है)

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् * (इति सन्निधीकरणम्)

अर्थ—पञ्चपरमेष्ठी और तीर्थंकर स्वरूप देवशास्त्रगुरु, यहाँ मेरे पास विराजिये ! विराजिये !! (यह सन्निधीकरण है)

अष्टक (गीताछन्द)

सुरपति उरग-नर-नाथ तिनकर बन्दनीक सुपद प्रभा ।
अतिशोभनीक सुवरण उज्वल देख छवि मोहत सभा ॥
वर नीर छीरसमुद्र घटभरि अग्र तसु बहु विधि नचूं ।
अरहन्त श्रुत सिद्धांत गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचूँ ॥

सुरपति=इन्द्र । उरगनाथ=धरणीन्द्र । नरनाथ=चक्रवर्ती । बन्दनीक=नमस्कार करने योग्य । सुपद-प्रभा=उत्तम चरणों की कान्ति । सुवरण-उज्वल=सुवर्ण (सोने) के मानस स्वच्छ । छवि=कान्ति । सभा=समोशरण में इन्द्र आदि की बारह सभायें । छीर समुद्र=क्षीर समुद्र नामक पाँचवाँ समुद्र । घट = घड़ा । निरग्रन्थ=परिग्रह रहित ।

अर्थ—हे भगवन् ! इन्द्र, धरणीन्द्र और चक्रवर्ती आपके चरणों मे मस्तक नमाते है, इसलिये आपके चरण निर्मल सुवर्ण के समान शोभायमान मालूम पडते हैं। इनकी कान्ति को देखकर समोशरण की सभायें मोहित हो जाती है ।

क्षीरसमुद्र के पवित्र जल का घड़ा भरकर आपके आगे नाचता हूं तथा जल चढ़ाता हूं । इस प्रकार देव, शास्त्र और गुरु की प्रति दिन पूजा करता हूं ।

मलिन वस्तु हर लेत सब, जल स्वभाव मलछीन।
जासौं पूजौं परमपद देव, शास्त्र गुरु तीन ॥

वस्तु=पदार्थ। मलछीन=मैल को दूर करना। परम-पद= पूजनीय ।

अर्थ—जल पदार्थों के मैल को दूर करता है क्योंकि मैल दूर करना जल का स्वभाव है। इसलिये भगवन्! पूजनीय देव, शास्त्र और गुरु तीनो की जल से पूजा करता हूं । जिससे मेरे आत्मा का मैल दूर हो जावे ।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल निर्वपा०

अर्थ—परमेष्ठी व तीर्थंकर स्वरूप देव शास्त्र गुरु को, जन्म, बुढ़ापा और मरण का नाश करने के लिये चढ़ाता हू।

जे त्रिजग-उदर-मझार प्राणी तपत अति दुद्धर खरे।
तिन अहित हरन सुवचन जिनके परम शीतलता भरे ॥
तसु भ्रमरलोभित घ्राण पावन सरस चन्दन घसि सचूं ।
अरहंत श्रुत सिद्धांत गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

त्रिजग-उदर-मझार=तीन लोक* रूपी गड्ढे मे । प्राणी= जीव। दुद्धर (दुर्द्धर)=नही सहन करने योग्य । खरे=बहुत अधिक गर्म । शीतलता=ठंडा करने वाले । भ्रमर=भौंरा।

---

* ऊर्ध्व लोक, मध्य लोक और अधोलोक ।

घ्राण=नाक से सूंघना। पावन=पवित्र करनेवाला। सुवचन=सुउपदेश (दिव्य ध्वनि)। सरस=रसपूर्ण=रसीला। घांस=घिस कर। तसु=भगवान् के चरणों में।

अर्थ—हे भगवन्! तीनों लोकों के जीव ससार के दुःखो से बहुत अधिक दुःखी है। जैसे बड़े भारी गड्ढे मे आग लगी हो और उसमें रहने वाले अथवा आ गिरने वाले जीव दुःखी होते हैं। ऐसे ससारियों के दुःख दूर करने के लिये हे जिनेन्द्रदेव! आपका उपदेश शान्ति उत्पन्न करने वाला है। इसलिये बहुत सुगन्धित चन्दन घिस कर आपकी पूजा करता हू जिससे मेरा ससार का दुःख शान्त हो जावे। इस प्रकार देव शास्त्र गुरु की प्रति दिन पूजा करता हू।

चन्दन शीतलता करे, तपत वस्तु परवीन।
जासौं पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन॥

तपत=तपी हुई। परवीन=समर्थ—चतुर।

अर्थ·तपी हुई चीज को शीतल (ठडा) करने के लिये चदन ही समथ है। इसलिये देव शास्त्र गुरु की चदन से पूजा करता हू।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दन नि०।

अर्थ—परमेष्ठी और तीर्थंकर स्वरूप देव शास्त्र गुरु को संसार का दुःख दूर करने के लिये चन्दन चढ़ाता हू।

यह भव-समुद्र अपार तारण के निमित्त सुविधि ठही।
अतिदृढ़ परम पावन जथारथ-भक्तिवर नौका सही॥
उज्वल अखंडित सालि तंदुल पुंज धरित्रय गुण जचूं।
अरहन्त श्रुत सिद्धांत गुरु निरग्रन्थ नित पूजा रचूं॥

भव-समुद्र=संसार रूपी समुद्र। अपार=पाररहित। तारण=पार करने के लिये। सुविधा=अच्छा उपाय। ठही=निश्चय किया। परम पावन=बहुत पवित्र। जथारथ (यथार्थ)=सच्ची। उज्वल=स्वच्छ। अखंडित=साबुत। तंदुल=चावल।

अर्थ—हे जिनेन्द्रदेव! यह संसार रूपी समुद्र अपार है। इससे पार होने के लिये आपकी परम पवित्र सच्ची भक्ति रूप मजबूत नाव ही समर्थ है। यह हमे पूरा विश्वास है। इसलिये ताजे और स्वच्छ शालिधान के तदुल के पुञ्ज चढ़ाकर सम्यग्दर्शन,ज्ञान और चारित्र तीन गुणो की याचना करता हू। इस प्रकार देव, शास्त्र और गुरु की प्रति दिन पूजा करता हूँ।

तंदुल सालि सुगन्ध अति, परम अखंडित बीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन॥

अर्थ—शालिधान के सुगन्धित और अखंडित तंदुलों को एक एक बीनकर पूज्य देव, शास्त्र और गुरु की पूजा करता हूँ।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तयेऽक्षतान् नि०।

अर्थ—पंच परमेष्ठी स्वरूप और तीर्थंकर स्वरूप देव शास्त्र गुरु को अविनाशीपद (मोक्ष) प्राप्त करने के लिये अक्षत चढाता हूँ।

जे विनयवन्त सुभव्य उर अम्बुज-प्रकाशन भान हैं।
जे एक मुख चारित्र भाषत त्रिजग मांहि प्रधान हैं॥
लहि कुन्द कमलादिक पहुप भव-भव कुवेदन सों बचूं।
अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु निरग्रंथ नित पूजा रचूं॥

विनयवन्त=नम्र। सुभव्य-उर-अम्बुज-प्रकाशन=भव्यों के मन रूपी कमलो को खिलाने के लिये। भान (भानु)=सूर्य।

प्रधान=श्रेष्ठ। पहुप (पुष्प)=फूल। कुवेदन=स्त्रीवेद, पुंवेद और नपुंसकवेद अथवा बुरे दुःख। लहि=प्राप्तकर।

अर्थ—हे जिनेन्द्रदेव! आप विनयवान् भव्य जीवों के मनरूपी कमलों को विकसित करने के लिये सूर्य के समान हैं, जैसे सूर्य के उदय होने पर कमल खिलते है, वैसे ही आप भव्यों को प्रसन्न करने वाले है, भव्यों का अज्ञानान्धकार दूर करने वाले हैं। आप प्रधानता से चारित्र का उपदेश देते हैं। हे देव! आप तीन लोक में प्रधान हैं। इसलिये कुन्दकमल आदि फूलों को लेकर अनेक जन्म के काम विकार के कष्टों से बचने के लिये प्रति दिन देव, शास्त्र और गुरु की पूजा करता हूं।

विविध भांति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन हैं।
तासों पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥

विविध=अनेक। भांति=प्रकार। परिमल=सुगंधित। सुमन=फूल। आधीन=वश में।

अर्थ—अनेक प्रकार के सुगन्धित फूलों से, भौंरे भी जिनकी सुगन्ध से वश में हो जाते हैं, उनसे पूजनीय देव, शास्त्र और गुरु की पूजा करता हूं।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि०।

अर्थ—परमेष्ठी स्वरूप और तीर्थंकर स्वरूप देव, शास्त्र और को कामबाण का नाश करने के लिये पुष्प चढ़ाता हूं।

अति सबल मद कन्दर्प जाको क्षुधा उरग अमान है।
दुस्सह भयानक तासु नाशन को सुगरुड़ समान है ॥

उत्तम छहों रस युक्त नैवेद्य कर घृत में पचूं ।
अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु निरग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

सबल=बलवान। मद-कन्दर्प=मदका वेग। क्षुधा-उरग=भूख रूपी सर्प। अमान=प्रमाण रहित। दुस्सह=कष्ट से सहने योग्य। गरुड=साँप का दुश्मन। पचूं=पकाता हूँ।

अर्थ—अत्यन्त बलवान मद के वेग को धरने वाले और महान् क्षुधारूपी सर्प का विष सहन नहीं हो सकता और वह बड़ा भयंकर है। उस विष को दूर करने के लिये भगवान्! आप गरुड़ के समान हैं। जैसे सांपको गरुड़ जीत लेता है वैसे ही भूख को आपने जीत लिया है। इसलिये घी में पकाकर छहों रसों के अच्छे अच्छे पकवानों से आपकी (देव शास्त्र गुरु की) प्रति दिन पूजा करता हूँ जिससे मेरी क्षुधा दूर हो जावे।

नाना विधि संयुक्त रस, व्यञ्जन सरस नवीन ।
जासों पूजा परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥

नाना विध=अनेक प्रकार के। संयुक्त=सहित। व्यञ्जन=पकवान। सरस=रस भरे।

अर्थ—हे भगवान्! छहो रसों के—रस भरे ताजे पकवानो से देव शास्त्र गुरु की पूजा करता हू।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि०

अर्थ—पञ्च परमेष्ठी और तीर्थंकर स्वरूप देव शास्त्र गुरु को भूखरूपी रोग का नाश करने के लिये नैवेद्य (चरु) चढ़ाता हूं।

जे त्रिजग उद्यम नाश कीने मोह-तिमिर महाबली ।
तिहि कर्मघाती ज्ञानदीप-प्रकाश-ज्योति-प्रभावली ॥

इहि भांति दीप प्रजाल कञ्चन के सुभाजन में खचूं ।
अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु निरग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

उद्यम=प्रयत्न । कीने=करने के लिये । मोहितिमिर=मोहनीय कर्मरूपी अन्धकार अर्थात् अज्ञानान्धकार । ज्ञानदीप-प्रकाश ज्योति प्रभावली=ज्ञानरूपी दीप के प्रकाश के ज्योति की चमक की पंक्ति—अर्थात् ज्ञानरूपी प्रकाश । खचूं=सजाऊं । कंचन-सुवर्ण=सोना ।

अर्थ—हे भगवान् ! तीन लोक के प्राणियों के सच्चे पुरुषार्थ को नाश करने के लिये मोहनीय कर्म रूपी अन्धकार बहुत बलवान् है । उस मोहनीय कर्म को नाश करने वाला आपका ज्ञान-रूपी दीपक का प्रकाश ही समर्थ है अर्थात् आप मोहनीय कर्म को नष्ट कर केवलज्ञान प्राप्त कर चुके हैं । इस प्रकार दीपक जलाकर सुवर्ण के पात्र में सजाता हूं और प्रति दिन देव, शास्त्र और गुरु की पूजा करता हूँ । जिससे मेरा मोह दूर हो जावे ।

स्वपर प्रकाशक जोति अति, दीपक तम करि हीन ।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥

स्वपर-प्रकाश=अपने और दूसरे को प्रकाश करने वाले । तम-करि=अन्धकार से ।

अर्थ—हे भगवान् ! आपका केवलज्ञान रूपी दीपक अज्ञानान्धकार से रहित है । इससे अपना और पर पदार्थ का प्रकाश होता है । इसलिये दीपक से देव, शास्त्र और गुरु की पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि०

अर्थ—परमेष्ठी और तीर्थंकर स्वरूप देव शास्त्र गुरु को मोह

रूप अन्धकार नाश करने के लिये दीपक चढ़ाता हूं।

जो कर्म-ईंधन-दहन, अग्निसमूह सम उद्धत लसै।
वर धूप तास सुगन्धता करि, सकल परिमलता हंसे ॥
इह भांति धूप चढ़ाय नित, भव-ज्वलन मांहि नहीं पचूं।
अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥

कर्म-ईंधन-दहन=कर्मरूपी ईंधनको जलाने के लिये। उद्धत=बहुत। लसै=शोभित होता है। परिमलता=सुगन्धता। भव-ज्वलन मांहि=संसाररूपी अग्नि में।

अर्थ—हे भगवन्! कर्मरूप इंधन को जलाने के लिये आप अग्नि के समान प्रकाशित है। अच्छे धूप की सुगन्ध से सभी सुगन्धियां मन्द हो जाती हैं। इसी तरह हे देव! प्रतिदिन धूप चढ़ाता हूं जिससे मैं ससार रूपी अग्नि से दूर रहूं। अर्थात् धूप चढ़ाने से ससार का नाश हो जावे। इस तरह देव, शास्त्र और गुरु की प्रतिदिन पूजा करता हूं।

अग्नि मांहि परिमल दहन, चंदनादि गुण लीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥

अर्थ—चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों के गुणों से सहित धूप को अग्नि में जलाकर देव, शास्त्र और गुरु की पूजा करता हूं।

नोट—धूप में चन्दन, छेल छबीला, कपूरकाचरी, कपूर आदि सुगन्धित द्रव्य मिलाये जाते है।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपम् नि० स्वाहा।

अर्थ—परमेष्ठी और तीर्थंकर स्वरूप देव, शास्त्र और गुरु को आठों कर्मों को नाश करने के लिये धूप चढ़ाता हूं।

लोचन सुरसना घ्राण उर-उत्साह के करतार हैं।
मोपै न उपमा जाय बरणी सकल फल गुणसार हैं॥
सो फल चढ़ावत अर्थ पूरन परम अमृत रस सचूं।
अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु निरग्रन्थ नित पूजा रचूं॥

लोचन=आंख। सुरसना=जिह्वा इन्द्रिय। घ्राण=नासिका इन्द्रिय। उर=मन। उत्साह=प्रसन्न। बरणी=कही। सकल=सब। अमृतरस=अनन्त सुख।

अर्थ—हे देवाधिदेव! नेत्र इन्द्रिय, जिह्वा इन्द्रिय, नासिका इन्द्रिय और मन को प्रसन्न करने वाले फल है। इनमे अच्छे फलों के सभी गुण है, मुझसे जिनके गुणो की तुलना नहीं की जा सकती। हे भगवान्! अपने मोक्षरूपी प्रयोजन को पूर्ण करने के लिए फल चढ़ाता हूं, जिससे मुझे अनन्त सुख प्राप्त हो। इस प्रकार प्रतिदिन देव, शास्त्र और गुरु की पूजा करता हूं।

जे प्रधान फल फल विषैं, पंच करण रस लीन।
जासौं पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥

फल विषै=फलों में। पंचकरण-रसलीन=स्पर्शन आदि पांचों इन्द्रियो के विषयों से सहित अर्थात् छूने में चिकने, खाने में मीठे इत्यादि।

अर्थ—इन्द्रियों को प्रसन्न करने वाले उत्तम फलों से देव शास्त्र और गुरु की पूजा करता हूं।

ॐ ह्री देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फल नि० स्वाहा।

अर्थ—पंच परमेष्ठी और तीर्थंकर स्वरूप देव, शास्त्र, गुरु को मोक्षरूपी फल प्राप्त करने के लिए फल समर्पण करता हूं।

जल परम उज्वल, गंध, अक्षत, पुष्प चरु, दीपक धरूं।
वर धूप निर्मल फल विविध बहु जनमके पातक हरूं॥
इह भांति अर्घ चढ़ाय नित,भव्र करत शिव पंकति मचूं।
अरहन्त श्रत सिद्धान्त गुरु निरग्रन्थ नित पूजा रचूं॥

पातक=पाप—कर्म। शिव-पंकति=मोक्ष।

अर्थ—हे परमात्मन्! स्वच्छ जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और अनेक प्रकार के उत्तम फल चढ़ाकर अनेक जन्मों के कर्मों को दूर करूं। इस प्रकार अर्घ्य चढ़ाकर मोक्ष प्राप्त करूँ। इसलिए प्रतिदिन देव शास्त्र गुरु की पूजा करता हूं।

वसुविधि अर्घ संजोयकर, अति उछाह मनकीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥

वसुविधि=आठ प्रकार। संजोय कर=मिलाकर। उत्साह=प्रसन्नता। कीन=कर।

अर्थ—जल आदि आठों द्रव्य मिलकर और हृदय में प्रसन्नता रखकर पूजनीय देव, शास्त्र, गुरु की पूजा करता हूं।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्ये अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि० स्वाहा।

अर्थ—परमेष्ठी और तीर्थंकर स्वरूप देव शास्त्र गुरु को अमूल्य-पद (मोक्ष पद) प्राप्त करने के लिए अर्घ्यं चढाता हूं।

जयमाला

देव शास्त्र गुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार।
भिन्न भिन्न कहुँ आरती, अल्प सुगुण विस्तार॥

भारती—गुणों का वर्णन । अल्प=संक्षेप से । शुभ=मोक्ष ।

अर्थ—देव, शास्त्र और गुरु तीनों रत्न आदर करने योग्य हैं। इनसे आत्मा का कल्याण करने वाले सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीन रत्न उत्पन्न होते है। इसलिये संक्षेप से इनके अलग २ गुणों का वर्णन करता हूं। कहने में शब्द थोड़े है लेकिन उनमें अनेक गुण भरे हुए है।

चउकर्म कि त्रेसठ प्रकृति नाश,
जीते अष्टादश दोष राश।
जे परम सगुण हैं अनन्त धीर,
कहवत के छयालीस गुण गंभीर ॥

चउकर्म=ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार घातिया कर्म। अष्टादश-दोष-राश=जन्म जरा आदि अठारह दोषों का समूह।

अर्थ—हे देव ! घातिया कर्मों की ४७ और अघातिया कर्मों की १६ प्रकृतियां मिलाकर ६३* प्रकृतियों का नाश कर आपने जन्म जरा आदि अठारह दोषोंको जीत लिया है। कहने के लिये आपके ४६ गुण × हैं लेकिन आप में अनंत गुण विद्यमान है।

---

* ६३ प्रकृतियां—(ज्ञानावरण ५+दर्शनावरण ९+मोहनीय २८+अन्तराय ५)=४७ घातिया कर्म की प्रकृतियां+१६ (नरकगति, तिर्यंचगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि ४ जातियां, उद्योत, आतप, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर, नरक, तिर्यंच, देवायु ३=६३।

× अन्त में देखो।

शुभ समवशरण शोभा अपार।
शतइन्द्र नमत कर शीश धार ॥
देवाधिदेव अरहन्त देव।
वन्दौं मनवचतन करि सुसेव ॥

समवशरण (समोशरण)=देव आदि की बारह सभायें भगवान् की दिव्यध्वनि के समय होती हैं।

शत इन्द्र—भवनवासी के ४०, व्यन्तरदेवो के ३२, कल्पवासियों के २४, चन्द्र, सूर्य, चक्रवर्ती और सिंह ये १०० इन्द्र होते हैं।

अर्थ—आपका समोशरण बहुत शोभायमान है। आपको १०० इन्द्र मस्तक नमाकर नमस्कार करते हैं। इसलिये हे देवों के देव अरहन्तदेव! तुमको, मन, वचन और काय से सेवा कर मैं नमस्कार करता हूँ।

जिनकी धुन है ओंकार रूप।
निरअक्षरमय महिमा अनूप।
दश अष्ट महाभाषा समेत।
लघु भाषा सात शतक सुचेत ॥

धुनि (ध्वनि)=दिव्यध्वनि-उपदेश। सात शतक=सातसौ।

अर्थ—अर्हन्त भगवान् की दिव्यध्वनि "ओम्" स्वरूप है। इसमें अक्षर नहीं होते हैं। किन्तु इसका अनुपम महत्व होता है। दिव्यध्वनि में १८ महाभाषायें और ७०० लघुभाषायें गर्भित समझनी चाहिये। अर्थात् उस दिव्यध्वनि का परिणमन इन भाषाओं मे होता है।

सो स्यादवादमय सप्तभंग ।
गणधर गूंथे बारह सुअंग ॥
रवि शशि न हरे सो तम हराय ।
सो शास्त्र नमों बहु प्रीति लाय ॥

स्यादवाद (स्याद्वाद)=स्यात् अस्ति आदि । सप्तभग पदार्थ का वर्णन करने के लिये सात नय (उपाय) । रवि=सूर्य । शशि=चन्द्रमा ।

अर्थ—हे भगवन् ! वह आपकी ओंकाररूप दिव्यध्वनि स्याद्वाद स्वरूप (सात भंग वाली) है । इसे गणधरो ने आचारांग आदि *१२ अंगों में रचा है । जो अन्धकार (अज्ञानान्धकार) सूर्य और चन्द्रमा दूर नही कर सकते उसे यह शास्त्र दूर कर देते हैं । इसलिये शास्त्र को बहुत प्रसन्नतापूर्वक नमस्कार करता हूँ ।

गुरु आचारज उवझाय साध ।
तन नगन रतनत्रय-निधि अगाध ॥
संसार देह वैराग धार ।
निरवांछि तपैं शिवपद निहार ॥

निधि=समुद्र । अगाध=अथाह । वैराग=ममता छोड़ना । निरवांछि=इच्छा न कर । निहार=देखकर ।

अर्थ—आचार्य, उपाध्याय और साधु ये तीनो गुरु है । इनका शरीर नग्न (वस्त्रादि रहित) रहता है किन्तु ये सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और-सम्यक्चारित्र-रूप रत्नो के-अथाह-समुद्र के-समान हैं ।

---

* अन्त मे देखो ।

अर्थात् तीनों गुरु सम्यग्दर्शन आदि धारण करते हैं। इसलिये संसार और शरीर से वैराग्य धरण कर, संसार के विषय भोगों की इच्छा नहीं रखते हुये मोक्ष का लक्ष्य कर तपस्या करते हैं। यह 'तन नगन" से बाह्य परिग्रह और "वैराग" से अन्तरङ्ग परिग्रह बताया गया है। आचार्य, उपाध्याय और साधु, दोनो प्रकार के परिग्रह को छोड़कर मोक्ष का ध्यान रखकर तप करते हैं।

गुण छत्तिस पच्चिस आठवीस।
भव-तारण-तरण जहाज ईश ॥
गुरु की महिमा वरणी न जाय।
गुरु नाम जपौं मन वचन काय ॥

अर्थ—*आचार्य के ३६, उपाध्याय के २५ और साधु के २८ मूलगुण होते हैं। हे गुरुदेव! आप ससार से तरने और तारने के लिये जहाज के समान है। गुरुओ की महिमा का वर्णन नही हो सकता। इसलिये मन, वचन और काय से सदा गुरुओं का नाम जपता हूँ—इन्हीं का ध्यान करता हूँ।

सोरठा—कीजै शक्ति प्रमान, शक्ति बिना सरधा धरै।
'द्यानत' सरधावान, अजर अमर पद भोगवै ॥

अर्थ—अपनी शक्ति के अनुसार देव, शास्त्र और गुरु की पूजा, भक्ति, ध्यान और जाप करनी चाहिये। यदि शक्ति न हो तो श्रद्धा रखने वाला भी जरा (बुढ़ापा) और मरण आदि दोष रहित मोक्ष पद को प्राप्त करता है।

---

* अंत में देखो।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो महार्घ्यं नि० स्वाहा ।

अर्थ—परमेष्ठी और तीर्थंकर स्वरूप देव, शास्त्र और गुरु को महार्घ चढ़ाता हूं ।
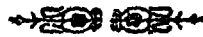
बीस तीर्थंकर पूजा ।

स्थापना

दोहा—दीप अढ़ाई मेरु पन, अब तीर्थंकर बीस ।
तिन सबकी पूजा करूं, मन वच तन धरि शीस ॥

अढाई दीप (ढाई द्वीप) = जम्बूद्वीप, धात की खंड द्वीप और आधा पुष्करवर द्वीप । मेरु पन = पांचमेरु—१ जम्बूद्वीप में, २ धात-की खंड में और २ पुष्करवर द्वीप के अर्ध भाग में । इस प्रकार कुल ५ मेरु होते हैं। जिनके नाम ये हैं:—सुदर्शन, विजय, अचल, मन्दिर और विद्युन्माली ।

अर्थ—ढाई द्वीप में पांच मेरु पर्वत हैं, उनमें अब विहार करने वाले बीस तीर्थंकर हैं । उन सब की मन, वचन और काय से मस्तक नमाकर पूजा करता हूँ ।

ॐ ह्री विदेहक्षेत्रसम्बन्धिविद्यमानविंशतितीर्थंकरा अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम् ।

अर्थ—विदेह क्षेत्र में उपस्थित रहने वाले सीमन्धर आदि तीर्थंकर यहां पधारे ! पधारें !! आह्वाननम् !

ॐ ह्रीं विदेहक्षेत्र सम्बन्धी विद्यमानविंशतितीथकरा अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् ।

अर्थ—विदेह क्षेत्र सम्बन्धी विद्यमान बीस तीर्थंकर यहां विराजे ! विराजें ! (स्थापना)

ॐ ह्रीं विदेहक्षेत्रसम्बन्धिविद्यमानविंशतितीर्थंकरा अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणम् ।

अर्थ—विदेह क्षेत्र में विद्यमान बीस तीर्थंकर यहा मेरे पास विराजे (सन्निधीकरण)

इन्द्र फणीन्द्र नरेन्द्र वंद्य पद निर्मल धारी ।
शोभनीक संसार सार गुण हैं अविकारी ॥
क्षीरोदधि सम नीर सों (हो), पूजों तृषा निवार ।
सीमंधर जिन आदि दे (स्वामी), बीस विदेह मंझार ॥
श्री जिनराज हो भव तारण-तरण जहाज ॥

फणीन्द्र=धरणीन्द्र । नरेन्द्र=चक्रवर्ती । वद्य=नमस्कार करने योग्य । अविकारी=जन्म जरा आदि विकाररहित । तृषा=प्यास । निवार=दूर करने के लिये । तारण-तरण=दूसरो को संसार समुद्र से पार करने वाले और स्वयं पार होनेवाल ।

अर्थ—हे जिनेन्द्रदेव ! आप इन्द्र, धरणीद्र और चक्रवर्ती से नमस्कार करने योग्य है और कर्मरहित पद (मोक्ष) के धारण करने वाले है, संसार मे शोभायमान है और विकार रहित उत्तम गुणों को धारण करने वाले है । इसलिये प्यास दूर करने के लिये क्षीरोदधि के समान स्वच्छ जल से, विदेह क्षेत्र मे सदा रहने वाले सीमन्धर आदि भगवान् की पूजा करता हू । हे भगवान् ! आप संसार के जीवों को पार लगाते हैं और स्वयं पार होते है, इसलिये जहाज के समान हैं ।

ॐ ह्रीं विदेहक्षेत्रसम्बन्धिविद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो जन्म-जरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

अर्थ—विदेहक्षेत्र में विद्यमान बीस तीर्थंकरो को, जन्म जरा और मृत्यु को नष्ट करने के लिये अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने के लिये जल चढ़ाता हूं ।

विदेह के बीस तीर्थंकरों के नाम इस प्रकार हैं :—

१ सीमन्धर, २ युग्मन्धर, ३ बाहु, ४ सुबाहु, ५ संजात, ६ स्वयंप्रभु, ७ ऋषभानन, ८ अनन्तवीर्य, ९ सूर्यप्रभु, १० विशालकीर्त्ति, ११ वज्रधर, १२ चन्द्रानन, १३ चन्द्रबाहु, १४ भुजंगम, १५ ईश्वर, १६ नेमिप्रभु, १७ वीरषेण, १८ महाभद्र, १९ देवयश और २० अजितवीर्य ।

तीन लोक के जीव, पाप-आताप सताये ।
तिनको साता दाता, शीतल वचन सुहाये ॥
बावन चन्दनसों जजूं (हों) भ्रमन तपन निरवार ॥ सीमं०

पाप=आठ कर्म । आताप=गर्मी, दुःख । साता दाता=शांति देने वाले । सुहाये=अच्छे मालूम होते है । जजूं=पूजा करता हू । भ्रमन-तपन=संसार मे घूमने का दुःख ।

अर्थ—हे भगवन् ! तीन लोक के सभी जीव, कर्मों के दुःख से दुःखी है । उनको सुख शान्ति देने वाले आपके शान्ति भरे हुए वचन (दिव्यध्वनि) ही अच्छे मालूम पड़ते हैं—हितकर है । इस लिये संसार में घूमने का दुःख दूर करने के लिये बावन चन्दन से आपकी पूजा करता हूं ।

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो भवातापविनाशनाय चन्दनं नि० स्वाहा ।

अर्थ—विद्यमान बीस तीर्थङ्करों को संसार के दुखों को दूर करनेके लिये चन्दन चढाता हूं।

यह संसार अपार, महासागर जिन स्वामी।
तातैं तारे वड़ी भक्ति–नौका जगनामी ॥
तंदुल अमल सुगन्ध सों (हों), पूजूं तुम गुण सार ॥ सीमं०

जगनामी=संसार मे प्रसिद्ध। सागर=समुद्र।

अर्थ—हे जिनेन्द्र भगवान्! यह संसार रूपी महासागर अपार है। और संसार मे यह प्रसिद्ध है कि आप अपनी भक्ति रूपी नौका (नाव) से संसारियो को ससार रूप समुद्र से पार करते हैं। इस लिये तुम्हारे उत्तम गुणों की, स्वच्छ और सुगन्धित शालितन्दुल (चावल) से पूजा करता हूं।

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽक्षयपदप्राप्तयेऽक्षतं नि० स्वाहा।

अर्थ—विद्यमान बीस तीर्थङ्करों को अविनाशीपद (मोक्ष) प्राप्त करने के लिये अक्षत चढ़ाता हूं।

भविक-सरोज-विकाश, निन्द्य तमहर रवि से हो।
जति श्रावक आचार, कथन को तुमही वड़े हो ॥
फूल सुवास अनेक सों (हों), पूजों मदन प्रहार ॥ सीमं०

भविक=भव्य। सरोज=कमल। विकाश=खिलाना। निन्द्य=निन्दा करने योग्य। रवि=सूर्य। जति (यति)=मुनि। श्रावक=गृहस्थ। मदन=कामवेग। प्रहार=नाश।

अर्थ—हे भगवान्! जैसे कमल को सूर्य खिला देता है और

अन्धकार को दूर कर देता है उसी प्रकार आप-भव्य रूपी कमलों का विकास करने के लिये तथा भव्यों का अज्ञान रूप अन्धकार नाश करने के लिये सूर्य के समान हैं तथा आप ही मुनियों और गृहस्थों के चारित्र का उपदेश करने के लिये प्रधान हैं—समर्थ हैं। इसलिये हे स्वामिन् ! कामदेव को नष्ट करने के लिये अनेक सुगन्धित फूलो से आपके चरणों की पूजा करता हूँ।

ॐ ह्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य: कामबाणविध्वंसनाय पुनि० स्वाहा।

अर्थ—विद्यमान बीस तीर्थंकरों को कामबाण का नाश करने के लिये पुष्प चढ़ाता हूँ।

कामनाग-विषधाम,-नाश को गरुड़ कहे हो।
क्षुधा-महादव-ज्वाल, तासु को मेघ लहे हो ॥
नेवज बहुघृत मिष्ट सों (हों), पूजों भूख विडार ॥ सीमं०

काम नाग=कामदेवरूपी सर्प। विषधाम=जहर का स्थान। महादवज्वाल=दावानल। विडार=नाश करने के लिये।

अर्थ—हे भगवान् ! आप कामरूपी सर्प के विष को दूर करने के लिये गरुड के समन है। और भूखरूपी दावानल (जङ्गल में लगी आग) को शान्त करने के लिये बादलो के समान है। इस लिये भूख को नाश करने के लिये बहुत घी मे पके हुये मधुर पकवानो से आपकी पूजा करता हूं।

ॐ ह्री विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्य: क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि० स्वाहा।

अर्थ—विद्यमान बीस तीर्थंकरो को क्षुधारूपी रोग को नष्ट

करने के लिये नैवेद्य चढ़ाता हूँ।

उद्यम होन न देत, सर्व जग माँहि भर्यो है।
मोह-महातम घोर, नाश परकाश कर्यो है॥
पूजों दीप प्रकाश सों (हो) ज्ञान ज्योति करतार॥ सीमं०

[उद्यम=आत्मा के कल्याण का प्रयत्न। मोहमहातम=मोहनीय कर्मरूप महान अन्धकार=अज्ञानान्धकार। परकाश (प्रकाश) =केवलज्ञानरूप प्रकाश। ज्ञानज्योति=केवज्ञानरूप प्रकाश।

अर्थ- हे देव! समस्त संसार में मोहनीय कर्मरूप अन्धकार भरा हुआ है। इसलिये आत्मा का हित नहीं हो पाता। आपने मोहनीय कर्म को नष्ट कर केवलज्ञान रूप प्रकाश किया है अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त कर लिया है। इसलिये आपकी दीपक से पूजा हूँ जिससे मुझमे केवलज्ञान रूप प्रकाश हो जावे।

ॐह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं नि०।

अर्थ--विद्यमान बीस तीर्थंकरों को मोहान्धकार दूर करने के लिये दीपक चढ़ाता हूँ।

कर्म आठ सब काठ भार विस्तार निहारा।
ध्यान-अगनिकर प्रगट सर्व कीनों निरवारा॥
धूप अनूपम खेवतें (हो) दुःख जलै निरधार॥ सीमं०

विस्तार=समूह। निहारा=देखा जाना। निरवारा=दूर किया। अनूपम=उपमा रहित। निरधार=निश्चयंपूर्वक।

अर्थ—हे भगवान्! आपने ज्ञानावरण आदि कर्मों को लकड़ियों का बोझा समझ कर ध्यानरूप अग्नि से, प्रकट रूप से जाल डाला

हैं अर्थात् आपने ध्यान करने से आठों कर्मों को नष्ट कर दिया है । इसलिये यह निश्चय है कि अनुपम धूप खेने से हमारे संसार के जन्म मरण आदि दुःख दूर हो जावेंगे।

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो ऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्व० स्वाहा ।

अर्थ—विद्यमान बीस तीर्थंकरों को आठों कर्मों को नष्ट करने के लिये धूप चढ़ाता हूं।

मिथ्यावादी दुष्ट लोभऽहंकार भरे हैं ।
सब को छिन में जीत जैन के मेरु खरे हैं ॥
फल अति उत्तम सों जजूं (हो) वांछितफल दातार ॥ सीमं

मिथ्यावादी=चार्वाक आदि एकान्तवादी । लोभ=लालच । अहंकार=अभिमान । छिन=(क्षण) बहुत जल्दी । मेरु=पंचमेरु पर्वत । बांछित=मनचाहा ।

अर्थ—हे भगवान् ! संसार में नास्तिक और एकान्तवादी आदि मिथ्यात्वी, लोभ और अभिमान से चूर हो रहे हैं । उन सब को जीतकर आप जिनेन्द्र देव मेरु पर्वत के समान खड़े हुये हैं । इस लिये इच्छित फल (मोक्ष फल) देने वाले उत्तम फलो से आपकी पूजा करता हूं।

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्व० स्वाहा ।

अर्थ—विद्यमान बीस तीर्थङ्करो को मोक्ष प्राप्त करने के लिये फल चढ़ाता हूं ।

जल फल आठों दरब, अरघ कर प्रीत धरी है ।

गणधर इन्द्रनि हुंतैं, थुति पूरी न करी है।
'द्यानत' सेवक जानके (हो) जगतें लेहु निकार ॥ सीमं०

आठो दरव (आठों द्रव्य)=जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल।

अर्थ—हे भगवान्! जल से लेकर फल तक आठों द्रव्य मिलाकर प्रेमपूर्वक अर्घ्य तैयार किया है। आपकी स्तुति गणधर और इन्द्र भी पूरी तरह से नहीं कर सकते। इसलिये आप "द्यानतराय कवि" को अपना सेवक समझकर संसार समुद्र से निकाल लो।

ॐ ह्रीं सीमन्धरादिविद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि० स्वाहा।

अर्थ—सीमन्धर आदि विद्यमान बीस तीर्थंकरो को अमूल्य-पद (मोक्ष) प्राप्त करने के लिये अर्घं चढ़ाता हूँ।

जयमाला

सोरठा--ज्ञान-सुधाकर चन्द, भविक खेत हित मेघ हो।
भ्रमतम भान अमन्द, तीर्थंकर बीसों नमों ॥

ज्ञान-सुधाकर=ज्ञान रूपी अमृत को उत्पन्न करने वाले। भविक खेत=भव्यरूपी खेत। भ्रमतम भान=मिथ्यात्वरूपी अन्धकार को दूर करने के लिये भान (भानु) सूर्य के समान। अमन्द=प्रकाशमान।

अर्थ—हे जिनेन्द्रदेव! आप ज्ञान रूप अमृत को उत्पन्न करने के लिये चन्द्रमा के समान हे अर्थात् आप जगत् को ज्ञानवान् बनाते हैं। आप भव्यरूपी खेत के लिये बादल के समान हैं। जैसे खेतो में पानी बरसने से उनमे खेती अच्छी होती है, उससे खेत को लाभ होता है वैसे ही आप भव्यों का कल्याण करते हैं। और मिथ्यात्व

रूपी अन्धकार को नाश करने के लिये प्रकाशमान् सूर्य के समान हैं अर्थात् आप अज्ञानान्धकार को दूर करते हैं । इसलिये ऐसे सीमन्धर आदि बीसों तीर्थंकरों को नमस्कार करता हूं ।

सीमन्धर सीमन्धर स्वामी । जुगमन्धर जुगमन्धर नामी ।
बाहु बाहुजिन जगजन तारे । करम सुबाहु बाहुबल दारे ॥१॥

सीमन्धर=सीमा को धारण करनेवाले । जुगमन्धर=व्यवहार और निश्चय दोनों नयों को धारण करनेवाले । बाहु=भुजा । दारे=नष्ट किये ।

अर्थ--हे सीमंधर स्वामी ! आप धर्म की सीमा को धारण करने वाले स्वामी होने के कारण सीमन्धर कहलाते हैं । दोनों प्रकार के नयों को अथवा मुनि और श्रावकों--दोनों के आचार का कथन करने वाले हैं । और तीनों लोकों में प्रसिद्ध होने के कारण आप जुगमन्धर (युग्मन्धर) हो । हे जिन ! आपने अपनी ज्ञानरूपी भुजाओं से संसार के जीवो को संसार समुद्र से पार कर दिया है, इसलिये आप बाहु हैं । हे भगवन् ! आपने ध्यानरूपी भुजा के बल से कर्मों को नष्ट कर दिया है इसलिये आप सुबाहु कहलाते हैं ।

जात सुजात सु केवलज्ञानं । स्वयंप्रभू प्रभु स्वयं प्रधानं ।
ऋषभानन ऋषिभानन दोषं । अनन्तवीरज वीरज कोषं ॥२॥

भानन=नाश करने वाले । कोषं=भण्डार । ऋषि=मुनि ।

अर्थ—हे सुजात ! आपने उत्तम केवलज्ञान प्राप्त कर लिया है इसलिये सुजात कहलाते हैं । सब देवों में स्वयं ही श्रेष्ठ (समर्थ) हैं इसलिये आप स्वयप्रभु कहलाते हैं । ऋषियों-मुनियों के दोषों का नाश करते हैं इसलिये आप ऋषभानन कहलाते हैं । अनन्त वीर्य के भण्डार होने के कारण आप अनन्तवीर्य कहलाते हैं ।

सौरीप्रभ सौरी गुणमालं । सुगुण विशाल विशाल दयालं ।
वज्रधार भवगिरिवंज्जर हैं । चन्द्रानन चन्द्रानन वर हैं ॥ ३

सौरीगुणमालं=सूर्य की प्रभा के समान गुणो के समुदाय। सुगुण=उत्तम गुण। विशाल=महान। भवगिरिवज्जर (भवगिरि वज्र)=संसाररूपी पर्वत को नाश करने के लिये वज्र के समान। चन्द्रानन=चन्द्रमा के समान मनोहर मुख वाले।

अर्थ—सूर्य के समान चमकने वाले गुणो का समुदाय होने के कारण आप सौरीप्रभ (सूर्यप्रभु) कहलाते हैं । महान् गुणो और दया के धारण करने वाले होनेके कारण आप विशाल हैं और आप की कीर्ति तीनो लोको मे फैली हुई है, इसलिये आप विशालकीर्ति कहलाते हैं। आप संसार रूपी पर्वत को भेदने के लिये वज्र के समान हैं इसलिये आपका नाम वज्रधार है । चन्द्रमा के समान उत्तम मुख होने के कारण आप चन्द्रानन कहे जाते हैं।

भद्रबाहु भद्रनिके करता । श्री भुजङ्ग भुजङ्गम भरता ।
ईश्वर सब के ईश्वर छाजैं । नेमिप्रभु जस नेमि बिराजैं ॥४

भद्रनि=कल्याणो के। भुजंमम-भरता=नागकुमार जाति के भवनवासी देवो के स्वामी। ईश्वर=स्वामी । छाजे=शोभित होते है। जसनेमि=कीर्त्तिरूप चक्र की धारा-लकीर।

अर्थ—आप समस्त कल्याणों को करने वाले है इसलिये आपका नाम भद्रबाहु है । नागकुमार देवो के स्वामी हो इसलिये भुजगम कहे जाते हो। आप तीन लोक के स्वामी है इसलिये ईश्वर कहे जाते है। आपकी कीर्ति रूप चक्र की आरा तीनों जगत मे फैली हुई है इसलिए आप नेमिप्रभु है ।

वीरसेन वीरं जग जाने । महाभद्र महाभद्र बखाने ।

नमों जसोधर जसधर कारी । नमों अजित वीरज बलधारी ।।५

महाभद्र=पंचकल्याणक धारण करनेवाले ।

अर्थ—हे वीरसेन ! आपकी वीरता को जगत जानता है इसलिए वीरसेन कहे जाते हैं । हे महाभद्र ! जगत् आपके पाँच कल्याणों का वर्णन करता है अथवा आप जीवों के कल्याण का उपदेश देते हैं, इसलिए आप का नाम महाभद्र है । हे जशोधर ! आपने यश को देने वाले कार्य किए हैं इसलिए आपका नाम यशोधर है । इसलिए आपको नमस्कार है । आप अनन्त बल को धारण करने वाले हैं ऐसे अजितवीर्य नाम वाले आपको नमस्कार है ।

धनुष पाँच सैं काय विराजै । आव कोडि पूरब सब छाजे ।

समोशरण शोभित जिनराजा । भव-जल तारण-तरण जहाजा ।

समोशरण=जिसमें अच्छी तरह से चारो तरफ से (हर प्रकार की शरण (रक्षा) प्राप्त हो ऐसी १२ प्रकार की सभा वाली रचना ।

अर्थ—बीसों भगवानो की पाचसौ धनुष* की काय होती है और सब की एक कोटि पूर्व+ वर्ष की आयु होती है । ऐसे समोशरण में शोभायमान जिनदेव, संसार-समुद्र से पार करने के लिये और स्वयं पार होने के लिए जहाज के समान है ।

सम्यक्रत्नत्रय निधि दानी । लोकालोक प्रकाशक ज्ञानी ।

शत इन्द्रनि करि वन्दित सोहैं । सुर नर पशु सबके मन मोहैं ।

रत्नत्रय=सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र । शतइन्द्रन=

---

* चार हाथ का एक धनुष और २४ अंगुल का १ हाथ होता है ।

+ ८४ हजार को ८४ हजार से गुणा करने पर एक पूर्व होता और उसे एक करोड़ से गुणा करने पर एक कोटि पूर्व कहलाता है ।

४० भवनवासी, ३२ व्यन्तर देव, २४ कल्पवासी, इन्द्र, सूर्य, चक्रवर्ती और सिंह ये १०० इन्द्र हैं।

अर्थ—आप रत्नत्रय की निधि (कोष) के देने वाले हैं, और लोक तथा अलोक का प्रकाश करने वाले ज्ञान सहित हैं, आपको सौ इन्द्र नमस्कार करते हैं और आपके दर्शन कर देव, मनुष्य और पशु सब का मन मोहित हो जाता है।

दोहा—तुमको पूजैं वन्दना, करैं धन्य नर सोय।
'द्यानत' सरधा मन धरैं, सो भी धरमी होय॥

अर्थ—द्यानतरायजी कहते हैं कि हे भगवन्! जो तुम्हारी पूजा करते हैं और वन्दना करते हैं वे मनुष्य धन्य हैं तथा जो तुम्हारी मन मे श्रद्धा धारण करते हैं वे भी धर्मात्मा कहलाते हैं।

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो महार्घ्यं नि० स्वाहा।

अर्थ—सीमन्धर आदि विद्यमान बीस तीर्थंकरों को महार्घ्य अथवा पूर्ण अर्घ्य चढ़ाता हूँ।

सिद्ध पूजा ।

स्थापना

दोहा—परम ब्रह्म परमातमा, परम ज्योति परमीश ।
परम निरंजन परम शिव, नमों सिद्ध जगदीश ।।

परमब्रह्म=पवित्र आत्मा मे लीन रहने वाले। परमातमा (परमात्मा)=शुद्धात्मा (द्रव्यकर्म रहित)। परमज्योति=उत्कृष्ट ज्ञान (केवलज्ञान) वाले। परमेश=सब से बड़े ईश्वर। परम निरंजन=राग द्वेषादि (भावकर्म) रहित । परमशिव=उत्तम सुख (अनन्त सुख) धारण करने वाले। जगदीश=तीनों (ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोक) लोकों के स्वामी।

अर्थ—हे पवित्र आत्मन् ! आप कर्ममल रहित हैं, केवलज्ञान सहित हैं, सब से महान् ईश्वर हैं, रागद्वेष आदि रहित है और अनन्त सुख सहित है। इससे तीन लोकों के नाथ सिद्ध भगवान् को मन, वचन और काय से नमस्कार करता हूँ।

ॐ ह्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इति आह्वानम्)।

अर्थ—सिद्धचक्र के स्वामी सिद्ध परमेष्ठी ! यहाँ आइये ! आइये !! (आह्वान)।

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)।

अर्थ—सिद्धचक्र के स्वामी सिद्धपरमेष्ठी ! यहा विराजिये ! विराजिये !! (स्थापना) ।

ॐ ह्री सिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इति सन्निधीकरणम्) ।

अर्थ—सिद्धचक्र के स्वामी सिद्धपरमेष्ठी! यहाँ मेरे पास विराजिये! विराजिये!! (सन्निधीकरण)।

※ अष्टक ※

सोरठा—मोह तृषा दुख देह, सो तुमने जीती प्रभो।
जल से पूजों नेह, मेरा रोग मिटाइये॥

मोह-तृषा=मोह रूपी प्यास। नेह=प्रेम पूर्वक। रोग=जन्म जरा मरण आदि।

अर्थ—हे सिद्ध भगवान! मुझे मोह रूपी प्यास दुःख देती है उसे आपने जीत लिया है—आपने मोहनीय कर्म को नष्ट कर दिया है। इसलिये प्रेमपूर्वक आपकी जल से पूजा करता हूं। आप मेरे जन्म, मरण आदि रोगो को दूर कर दीजिये।

ॐ ह्री सम्यग्दर्शनज्ञानानन्तदर्शनवीर्यसूक्ष्मत्वादगाहनात्वागुरुलघुत्वाव्याबाधात्वगुणविभूषितसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तबीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व और अव्याबाधत्व इन आठ गुणों से शोभायमान सिद्धचक्र के स्वामी सिद्ध परमेष्ठी को जन्म, जरा और मरण रूप रोग को दूर करने के लिये जल चढ़ाता हूँ।

हम भव आतप माहि, तुम न्यारे संसार तें।
कीजे शीतल छाहि, चन्दन सों पूजा करों॥

भव=नरक आदि चारों गतिया। आतप=गर्मी अथवा शारीरिक, मानसिक, वेदना और आगन्तुक दुखरूप गर्मी।

अर्थ—हे सिद्ध भगवान्। हम लोग नरक आदि गतियों में

भ्रमण करते हुए शरीर आदि अनेक प्रकार के दुःख भोग रहे है। और आप इन सब ससार के दुःखों से दूर हैं। इसलिये आप संसार की गर्मी को दूर करने के लिये शीतल करने वाली छाया दीजिये। मै चन्दन से प्रति दिन आपकी पूजा करता हूँ।

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारताप विनाशनाय चन्दन नि० स्वाहा।

अर्थ—संसार के दुखो को दूर करने के लिये सिद्धचक्र के स्वामी सिद्ध भगवान् को चन्दन चढ़ाता हूँ।

हम औगुन समुदाय, तुम अक्षय सब गुण भरे।
पूजों अक्षत ल्याय, दोष नाश गुण कीजिये॥

औगुन (अवगुण)=मिथ्यात्व आदि दोष। अक्षय=अविनाशी।

अर्थ—हे सिद्ध भगवान! हम संसारी जीव मिथ्यात्व आदि दोष सहित हैं और आप अविनाशी सम्यक्त्व आदि गुणों से शोभित हो। इसलिये हमारे दोषो का नाश कर गुण उत्पन्न कर दीजिये। मै आपकी अक्षत से पूजा करता हूँ।

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं नि० स्वाहा।

अर्थ—सिद्ध चक्र के स्वामी सिद्ध भगवान को, अक्षयपद मोक्ष प्राप्त करने के लिय अक्षत चढाता हूं।

काम अग्नि है मोहि, निश्चय शील स्वभाव तुम*।
पुष्प चढ़ाऊँ तोहि, सेवक की पावक हरो॥

पावक=कामदेव रूपी अग्नि।

---

* "चिरचयशील" भी पाठ है।

अर्थ—हे भगवान् ! मुझे कामदेवरूपी अग्नि दु:ख देती है और आप परमशील रूप शीतलता के धारण करने वाले हो। इसलिये मैं तुम्हे पुष्प चढ़ाता हूँ जिससे मुझ सेवक की कामदेव रूपी अग्नि शांत हो जावे।

ॐ ह्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वसनाय पुष्पं नि० स्वाहा।

अर्थ—सिद्धचक्र के स्वामी सिद्ध परमेष्ठी को कामदेवो रूपी बाण को नष्ट करने के लिये पुष्प चढ़ाता हूँ।

हमें छुधा-दु:ख भूर, ज्ञान खड्ग सों तुम हती।
मेरी बाधा चूर, नेवज सों पूजों तुम्हें॥

भूर (भूरि)=बहुत । ज्ञान-खड्ग=ज्ञान रूपी तलवार । हती=मारी। बाधा=दु:ख। चूर=नाश करना। नेवज=नैवेद्य।

अर्थ—हे सिद्ध परमेष्ठी ! हमें क्षुधा रूपी दु:ख बहुत सताता है। आपने क्षुधा को केवलज्ञान रूपी तलवार से नष्ट कर दिया है। मै आपकी नैवेद्य से पूजा करता हूँ। आप मेरे क्षुधा रूप दु:ख को नष्ट कर दीजिये।

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि० स्वाहा।

अर्थ—सिद्धचक्र के स्वामी सिद्ध परमेष्ठी को क्षुधा रूपी रोग दूर करने के लिये नैवेद्य चढ़ाता हूँ।

मोह तिमिर हम पास, तुम पै चेतन ज्योति है।
पूजों दीप प्रकाश, मेरो तम निरवारियो॥

मोह-तिमिर=मोहरूपी अन्धकार। चेतन-ज्योति=केवलज्ञान

रूपी प्रकाश । मोहनीयकर्म रूप अन्धकार । निरवारियो=दूर कीजिये ।

अर्थ—हे परमात्मा ! हम मोहनोय कर्म रूपी अन्धकार में पड़े हुए हैं और आपके पास केवलज्ञान रूपी प्रकाश है । इसलिये मैं आपको दोपक के प्रकाश से पूजन करता हूं । आप मेरे मोह रूप अन्धकार को दूर कर दोजिये । भावार्थ यह है कि मेरे मोहनीय कर्म को नष्ट कर केवलज्ञान प्रकट कर दीजिये ।

ॐ ह्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि० स्वाहा ।

अर्थ—सिद्धचक्र के स्वामी सिद्ध परमेष्ठी को मोहनाय कर्म रूप अन्धकार को दूर करने के लिये दीपक चढ़ाता हूँ ।

रुल्यो कर्मवन-जाल, मुक्ति माहिं तुम सुख करो ।
खेऊँ धूप रसाल, अष्ट× कर्मबन जारियो ।।

रसाल=सुगन्ध ।

अर्थ—हे सिद्ध भगवान् ! मै ज्ञानावरण आदि आठ कर्मरूप बन के जाल में अर्थात् घने जंगल मे भटक रहा हू और आप मोक्ष महल में सुख भोग रहे है । इसलिये मै सुगन्धित धूप खेता हूँ । आप मेरे आठ कर्म रूपी बन को जला दीजिये । जिससे मै भी आपके समान मोक्ष के सुख को प्राप्त कर सकूं ।

ॐ ह्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिनेऽष्टकर्मविध्वसनाय धूपं निर्व० स्वाहा ।

× "मम निकालविधि जारियो" यह भी पाठ है इसका अर्थ यह है कि मुझे कर्मरूपी बन के जाल मे से निकाल कर मेरे कर्मो को जला दीजिए अर्थात् मुझे भी मोक्ष की प्राप्ति हो जावे ।

अर्थ—सिद्धचक्र के स्वामी सिद्ध भगवान् को आठ कर्मों को नष्ट करने के लिये धूप चढ़ाता हूं।

अन्तराय दुखकार, तुम अनन्त थिरता लिए× ।
पूजों फल धर सार, विघन टार शिवफल करो ॥

विघन (विघ्न)=अन्तराय, दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य। थिरता=अनन्त काल तक। टार=दूर कर।

अर्थ—हे परमात्मन् ! मुझे अंतराय कर्म दुःख देता है और आप अनन्त काल के लिये मोक्ष सुख प्राप्त कर चुके है। मै आपको उत्तम फलो से पूजा करता हूँ। आप मेरे अन्तराय कर्म को दूर कर मोक्षरूपी फल दीजिये,

ॐह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्व०स्वाहा।

अर्थ—सिद्धचक्र के स्वामी सिद्ध भगवान् को मोक्ष प्राप्त करने के लिये फल चढाता हू।

हम में आठों दोष, जजों अरघ ले सिद्ध जी ।
वसु गुण दीजे मोष, "द्यानत" कर जोड़े खड़ो ॥

दोष—कर्म। जजो=पूजा करता हूँ। वसु गुण=सम्यक्त्व आदि गुण। मोष—मोक्ष। कर=हाथ।

अर्थ—हे सिद्ध भगवान् ! हम में ज्ञानावरण आदि कर्म रूपी आठ दोष है और आपने आठों कर्मों को नष्ट कर दिया है। इस लिये आपकी, अर्घ्य लेकर पूजा करता हूँ। आप हमे भी सम्यक्त्व

× "तुम अनन्त शिव पालिये"। इस पाठ का भी वही अर्थ है। जो ऊपर दिया गया है।

आदि गुण वाली मोक्ष पर्याय दीजिये । "द्यानतराय' कवि हाथ जोड़े खड़ा हुआ है।

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिनेऽनर्घ्यप्राप्तयेऽर्घ्यं नि० स्वाहा।

अर्थ—सिद्धचक्र के स्वामी सिद्ध परमेष्ठी को, अमूल्य पद की प्राप्ति—अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने के लिये अर्घ्य चढ़ाता हूँ।

जयमाला (दोहा)

आठ कर्म दृढ़ बन्ध सों, नख शिख बँध्यो जहान।
बन्ध रहित वसुगुण सहित, नमूं सिद्ध भगवान॥

आठ करम=ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय ये आठ कर्म। दृढ़=मजबूत। शिख=चोटी। जहान=संसार। वसुगुण=ज्ञानावरण आदि के अभाव से होने वाले केवलज्ञान आदि आठ गुण।

अर्थ—हे सिद्ध भगवान्! ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों के मजबूत बन्धनों से यह सब ससार सिर से पैर तक अच्छी तरह बधा हुवा है। आप इन बन्धनों से रहित हैं और अनन्त ज्ञान आदि आठ गुणों सहित हैं। इसलिये आपको नमस्कार करता हूं।

पद्धरी छन्द (आठ गुण)

सुखसम्यग्दर्शनज्ञान धरं। बलना गुरु वा लघु बाध हरं।
अवगाह अमूरत नायक हैं। सब सिद्ध नमों सुखदायक हैं॥

अर्थ—अनन्तसुखमय सम्यग्दर्शन (मोहनीय कर्म के अभाव से), अनन्त दर्शन (दर्शनाबरण कर्म के अभाव से), अनन्तज्ञान (ज्ञानावरण कर्म के अभाव से), अनन्त बल अथवा अनन्तवीर्य

(अन्तराय कर्म के अभाव से), अगुरु लघु (गोत्र कर्मके अभाव से), बाध हर-अव्याबाध (वेदनीय कर्म के अभाव से), अवगाह (आयु कर्म के अभाव से) और अमूरत (अमूर्तित्व) (सूक्ष्मत्व नाम कर्म के अभाव से) इन आठ गुणो के आप स्वामी हैं और आप सब जीवो को सुख देते है। इसलिए हे सिद्ध भगवान् ! आप सब को नमस्कार है।

अबलं अचलं अतुलं अटलं। अतनं अवचं अकुलं अमलं।
अजरं अमरं जगनायक हैं। सब सिद्ध नमौं सुखदायक हैं॥

अथ—हे सिद्ध भगवान् ! आप शारीरिक बलरहित हैं,चलते फिरते नही है,आपकी तुलना नही की जा सकती। स्थिर हैं, देह रहित हैं, वचन रहित है, कुल रहित हैं, कर्ममल रहित है, बुढापा रहित हैं यौर मरण-रहित हैं इस तरह सबको सुख देने वाले है। इसलिए आपको नमस्कार करता हू।

निरभोग स्वभोग अरोग परं। निरयोग असोग वियोग हरं।
अरमं स्वरमं दुखघायकहैं। सब सिद्ध नमौं सुखदायक हैं॥

अर्थ—हे सिद्ध परमेष्ठी ! आप विषय भोग रहित है,आत्मा के सुख को भोगनेवाले हैं, क्षुधा तृषा आदि रोग रहित है उत्कृष्ट हैं। मन, बचन और काय इन तीन योग रहित हैं, शोक रहित है, इष्ट के वियोग रहित हैं,ससार में रमण नही करते है, आत्मा मे लीन रहते है और दु खो का नाश करते हैं। इसलिए आप सब को नमस्कार करता हूँ।

सब कर्म कलङ्क अटक्क अजं। नरनाथ सुरेश समूह यजं।
मुनि ध्यावत सज्जन नायक हैं। सब सिद्ध नमौं सुखदायकहैं॥

अर्थ—हे सिद्ध भगवान् ! आप ज्ञानावरण आदि आठ कर्म

रूप दोष से रहित है, और जन्म रहित हैं । आपकी चक्रवर्ती और इन्द्र समूह पूजा करते है। मुनिजन आपका ध्यान करते हैं और आप सज्जनों के स्वामी है । इसलिए आपको नमस्कार करता हूँ।

अविरुद्ध विशुद्ध प्रबुद्धमयं । सब जानत लोक अलोक चयं।
परमं धरमं शिवलायकहैं । सब सिद्ध नमौं सुखदायक हैं ।।

अर्थ--हे भगवान्! आप विरोध रहित हैं, रागद्वेष रहित है, आप ज्ञानमय हैं और आप लोक और अलोक के समस्त पदार्थों को जानने वाले हैं। उत्कृष्ट धर्म को धारण करने वाले हैं और मोक्ष सुखके अधिकारी है। इसलिए मैं सब सिद्धों को नमस्कार करता हूं।

निरबंध अबंध अगंध परं । निरभ यनिरखय निरनय अघरं।
निररूप अनूप अकायक हैं। सब सिद्ध नमौं सुखदायक हैं ।।

अर्थ--हे सिद्ध भगवान्! आप ज्ञानावरण आदि द्रव्य कर्म के बंध से रहित हैं, रागद्वेष आदि भाव कर्म रहित है, गन्धरहित हैं, उत्कृष्ट है, भय रहित है, क्षय रहित हैं, नय (व्यवहार और निश्चय नय) रहित है, आधार अर्थात् घर रहित हैं, रूप रहित है, उपमा रहित हैं और शरीर रहित हैं। इसलिये सब सिद्धों को नमस्कार करता हूँ।

निरभेद अखेद अछेद लहा। निरद्वंद सुछंद अछंद महा।
अछुधा अतृषा अकषायक हैं। सब सिद्ध नमौं सुखदायक हैं ।।

अर्थ--हे भगवान्! आपने भेदरहितपना, खेदरहितपना और छेदरहितपना, प्राप्त कर लिया है। आप रागद्वेषरहित हैं,स्वतन्त्र

हैं और आज्ञा रहित हैं—स्वामी हैं। भूख रहित है, प्यास रहित है और कषाय रहित हैं। इसलिए सब सिद्धों को नमस्कार करता हूँ।

असमं अजमं अतमं लहियं। अगमं सुखमं सुखद गहियं।
यमराजकी चोट बचायकहैं। सब सिद्ध नमौं सखदायक हैं॥

अर्थ—हे भगवान्! आप समानता रहित हैं और आपने अन्धकार रहितपना प्राप्त किया है। गमनरहित हैं। अथवा आपका स्वरूप अचिन्तनीय सुखस्वरूप है और आप सुख देनेवाले पद को प्राप्त है। आप यमराज अर्थात् काल की चोट (मार) को बचानेवाले है-मरण रहित हे। इसलिए सिद्धो को नमस्कार करता हू।

निरधाम सुधाम अकामयुतं। अविहार निहार अहारच्युतं।
भवनाशन तीक्ष्ण सायक हैं। सब सिद्ध नमौं सुखदायक हैं॥

अर्थ—आप मकान (परिग्रह) रहित है, मोक्षरूप उत्तम महल में रहने वाले है, कामदेव की पीड़ा से रहित है, गमन रहित हैं मल मूत्र और भोजन रहित है। नरक आदि चारो गतियों को नाश करने के लिए पंने तीर के समान है अर्थात् आप ससार को नष्ट करने में समर्थ है। इसलिए सिद्ध समूह को नमस्कार करता हूँ।

निरवर्ण अकर्ण अशर्ण नतं। अगतं अमतं अक्षतं अरतं।
अस उत्तम भाव सुवायकहैं। सब सिद्ध नमों सुखदायकहैं॥

अर्थ—आप रूप रहित हैं, श्रोत्र (कान) इन्द्रिय रहित है और शरणरहित जीव आपको नमस्कार करते हैं, आप गतिरहित

है, अप्रमाण है, क्षय रहित है और राग रहित है। ऐसे सुख देने वाले उत्तम भाव सहित है । इसलिये सब सिद्धों को नमस्कार करता हूँ।

निरंग असंग अभंग सदा। अतपं अजयं अवयं सुखदा।
अमदं अगदं गुण ज्ञायक हैं। सब सिद्ध नमौं सुखदायक हैं।।

अर्थ—हे भगवान् ! आप सदा रूप रहित है, परिग्रह रहित है और विनाश रहित है। तप के कार्य से रहित हैं, जयरहित हैं अर्थात् आपको कोई जीत नहीं सकता, आयु कर्म रहित है और सदा सुख देने वाले है। जाति इत्यादि के मद से रहित है, रोग रहित है और ज्ञायक गुण सहित है । इसलिए सब सिद्धों को नमस्कार करता हूँ।

अविषादं अनादि अनादवरं। भगवंत अनंत महंत नरं।
तुम ध्येय,महामुनि ध्यायकहैं। सब सिद्ध नमौं सुखदायकहैं।।

अर्थ—आप रज रहित है, आदि रहित हैं, शब्द रहित हैं, श्रेष्ठ है, ऋद्धि और ऐश्वर्य सहित है, अन्त रहित है, और महा-पुरुष हैं। आप ध्येय (ध्यान करने योग्य) है और गणधर आदि आपका ध्यान करते है। इसलिए सिद्धों को नमस्कार करता हूँ।

निरनेह अदेह अगेह सुखी। निरमोह अकोह अलोह तुखी।
तिहुँ लोकके नायक पायकहैं। सब सिद्ध नमौं सुखदायकहैं।।

अर्थ—आप स्नेह रहित हैं, देह रहित है, घर रहित है और अनन्त सुखी हैं। मोह रहित है, क्रोध रहित है, लोभ रहित हैं और सन्तोषी हैं । आप तीनों लोक के स्वामी और रक्षा करने वाले हैं। इसलिए सब सिद्धों को नमस्कार करता हूँ।

पन्द्रहसौ भाग महा निवसैं । नवलाख के भाग जघन्य लसैं ।
तवनुातके अंत सहायक हैं । सब सिद्ध नमौं सुखदायक हैं ।।

अर्थ—आप तनुवातवलय के अन्त मे ५२५ धनुष की बड़ी अवगाहना की अपेक्षा पन्द्रहसौ भाग मे रहते है, और साढे तीन हाथ की जघन्य अवगाहना की अपेक्षा नौ लाख भाग मे रहते है और आप, सब की सहायता करने वाले हैं । इसलिए सिद्धो को नमस्कार करता हूँ ।

नोट—पौने सोलह सौ में १५०० का भाग देने से $१\frac{१}{२०}$ धनुष होते है । यह धनुष प्रमाणागुल से है । सिद्धो की अवगाहना उत्सेधागुल से है । इसमे ५०० का गुणा करने से ५२५ धनुष होते है । यही सिद्धो की उत्कृष्ट अवगाहना है । और जघन्य अवगाहना साढे तीन हाथ की होती है ।

आशीर्वाद (अन्तिम मङ्गलाचरण)

अविनाशी अविकार परम रसधाम हो ।
समाधान सर्वज्ञ सहज अभिराम हो ।।

शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध अनादि अनन्त हो ।
जगत शिरोमणि सिद्ध सदा जयवन्त हो ।।

ध्यान-अगनि करि कर्म-कलंक सबै दहे ।
नित्य निरञ्जन देव सरूपी हो रहे ।।

ज्ञायक के आकार ममत्व निवारकै ।
सो परमातम सिद्ध नमूं सिर नायकै ।।

अर्थ—हे सिद्ध भगवान् ! आप विनाश रहित है, विकार

रहित है, उत्तम अनुभव (सम्यग्दर्शन) के स्थान हो, सब गुणों को धारण करने वाले अथवा शान्तिमय हो, लोकालोक के ज्ञाता हो और सहज स्वभाव से सुन्दर हो। आप कर्मरहित शुद्ध है, ज्ञाता है, विरोध रहित है, आदि रहित और अन्त रहित हो। तीन लोक में प्रधान हो। ऐसे सिद्ध भगनान् की सदा जय हो। आपने ध्यान रूपी अग्नि से कर्म रूपी कक्षक को नप्ट कर दिया है अर्थात् आपने आठो कर्मो को नप्ट कर दिया है। आप सदा के लिए भावकर्मरहित होकर सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो चुके है। आप ज्ञाता व ज्ञानाकार हैं । मोह-मूर्छा को दूर कर आप परमात्मा हो गये है। इसलिए हे सिद्ध भगवान् ! मै आपको मस्तक नमाकर नमस्कार करता हूँ।

समुच्चय चौबीस जिन पूजा (भाषा)

॥ स्थापना ॥

वृषभ अजित संभव अभिनन्दन, सुमति पदम सुपास जिनराय ।
चंद पुहुप शीतल श्रेयांस नमि, वासुपूज्य पूजित सुरराय ॥
विमल अनंत धमजस उज्ज्वल, शान्तिकुंथु अर मल्लि मनाय ।
मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्वप्रभु, वर्द्धमान पद पुष्प चढ़ाय ॥

जिनराय=जिनेन्द्र भगवान । नमि=नमस्कार करके । पूजित=पूजे जाते हैं । सुरराय=इन्द्रादिकों से । जस=बड़ाई । उज्ज्वल=निर्मल । मनाय=प्रसन्न करके । पद=चरण । पुष्प=पीले चावल ।

अर्थ—जो इन्द्रादि देवो के द्वारा पूजे जाते हैं, तथा जिनका निर्मल यश ससार मे फैल रहा है, उन वृषभादि चौबीस तीर्थकरो के चरणो में स्थापना के हेतु पुष्प चढ़ाता हूँ ।

ॐ ह्री श्रीवृषभादि महावीरात चतुर्विशति जिन समूह ! अत्र अवतर अवतर सवौषट् । (इति आह्वाननम्)

अर्थ—श्री भ० आदिनाथ से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत चौबीस तीर्थकर समूह ! यहाँ आइये आइये । (यह आह्वानन है)

ॐ ह्री श्रीवृषभादि महावीरांत चतुर्विशति जिन समूह ! अत्र तिष्ट तिष्ठ ठ. ठ. (इति स्थापनम्)

अर्थ—श्री भ० आदिनाथ से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यन्त चौबीस तीर्थंकर समूह ! यहाँ ठहरिये ठहरिये (यह स्थापन है)

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादि महावीरांत चतुर्विशति जिन समूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इति सन्निधीकरणम्)

अर्थ—श्री भ० आदिनाथ से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत चौवीस तीर्थंकर समूह ! यहाँ मेरे पास विराजिये विराजिये। (यह सन्निधिकरण है)

॥ अष्टकं॥

मुनि-मन-सम उज्ज्वल नीर, प्रासुक गन्ध भरा।
भरि कनक-कटोरी धीर, दीनी धार धरा॥
चौवीसों श्रीजिनचन्द, आनन्द-कन्द सही।
पद जजत हरत भवफंद, पावत मोक्ष-मही॥

सम=समान। नीर=जल (पानी)। प्रासुक=शुद्ध। गन्ध-भरा=सुगन्धित। कनक=सोना। धीर=धीरज के साथ। दीनी=दी है। धार धरा=धारा रूप में। आनन्द कन्द=सुख देने वाले। जजत=पूजा करता है। भव फन्द=ससार का बन्धन। मही=पृथिवी (स्थान)

अर्थ—श्री वृपभ आदि चौबीस तीर्थंकर चन्द्रमा के समान आनन्द को देने वाले हैं। जो भव्य जीव उनके चरणो की पूजा करता है, वह ससार के बन्धन से छूट जाता है और मोक्ष रूपी उत्तम स्थान को प्राप्त करता है।

इसलिये हे भगवान्! मैं मुनियों के मन के समान शुद्ध और सुगन्धित जल की धारा सोने की कटोरी मे भर कर आपके चरणों में चढाता हू।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादि महावीरांते चौबीस तीर्थंकरेभ्यो जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जल निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ—श्री वृपभादि चौवीस तीर्थंकरों को जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु को नाश करने के लिये जल चढ़ाता हूँ।

गोशीर कपूर मिलाय, केशर-रंग भरी ।
जिन-चरनन देत चढ़ाय, भव-आताप हरी ।। चौबीसों०।।

गोशीर=चन्दन । भव=ससार । आताप=दुख । हरी=दूर करता है ।

अर्थ—हे भगवन् ! मै गोशीर, कपूर आदि मिलाकर उत्तम रग वाली चन्दन की धारा को आपके चरणों में चढ़ाता हूँ, जो ससार के समस्त दु खो को दूर करने वाली है ।

ॐ ह्री श्रीवृषभादि वीरातेभ्यो चन्दन नि० स्वाहा ।

अर्थ—श्री वृषभादि चौबीस तीर्थकरों को ससार के दुःखों को दूर करने के लिये चन्दन चढ़ाता हू ।

तन्दुल सित सोम समान, सुन्दर अनियारे ।
मुकता फल की उनहार, पुञ्ज धरों प्यारे ।। चौबीसों०।।

तन्दुल=कच्चे चावल । सित=सफेद । सोम=चन्द्रमा । अनियारे=अनोखे । मुकता फल=मोती । उनमान=समान । पुञ्ज=ढेर । धरों=चढाता हूँ ।

अर्थ—हे भगवन् ! मैं चन्द्रमा के समान सफेद, सुन्दर अनोखे और मोतियो के समान चमकदार चावलो की ढेरी आपके चरणों में चढाता हू ।

ॐ ह्री श्रीवृषभादि वीरातेभ्यो अक्षतान् नि० स्वाहा ।

अर्थ—श्रीवृषभादि तीर्थंकरों को अविनाशी मोक्ष स्थान पाने के लिये मै अक्षत चढ़ाता हूं ।

वर-कञ्ज कदम्ब कुरंड, सुमन सुगन्ध भरे ।
जिन अग्र धरों गुन मंड, काम-कलंक हरे ।। चौबीसों०।।

वरकंज=उत्तम कमल। कदम्ब=वृक्ष का नाम। सुमन=फूल। अग्र=आगे । गुनमड=गुण सहित । काम=काम वासना । कलक=दोष ।

अर्थ--हे भगवन् ! मैं कमलादि सुगन्धित पुष्पो का समूह आपके चरणो में चढ़ाता हू, जो कामवासना रूपी दोष को दूर करने वाला है।

ॐह्री श्रीवृषभादि वीरातेभ्यो पुष्पं नि० स्वाहा।

अर्थ-श्रीवृषभादि चौबीस तीर्थकरो को कामबासना रूपी रोग को दूर करने के लिये पुष्प चढाता हूं।

मनमोदन मोदक आदि, सुन्दर सद्य बने।
रसपूरित प्रासुक स्वाद, जजत छुधादि हने ॥ चौबीसों०

मनमोदन=मन को प्रसन्न करने वाले। मोदक आदि=लड्डू वगैरह । सद्य बने=अभी बने हुए । रस पूरित=रस वाले। प्रासुक=शुद्ध। छुधादि=भूख आदि। हने=नाश करते हैं।

अर्थ--हे भगवन् ! मै मन को प्रसन्न करने वाले, सुन्दर, रस वाले, पवित्र और उत्तम स्वाद वाले अभी बने हुए लड्डू आदि नैवेद्य आपके चरणों में चढाता हूँ, जिनके द्वारा पूजा करने से भूख आदि कष्ट दूर हो जाते है।

ॐह्री श्रीवृषभादि वीरांतेभ्यो नैवेद्यं नि० स्वाहा।

अर्थ-श्री वृषभादि चौवीस तीर्थंकरो को भूख आदि रोग दूर करने के लिये नैवेद्य चढ़ाता हूँ।

तमखंडन दीप जगाय, धारों तुम आगे।
सब मोह तिमिर क्षय जाय, ज्ञानकला जागे ॥ चौबीसों०॥

तम खंडन=अन्धकार को नाश करने वाला । जगाय=जला कर । तिमिर=अन्धकार । मोह=ममता भाव । क्षय=नाश । कला=चमक ।

अर्थ-हे भगवन् ! मै अन्धकार को नाश करने वाला दीपक जलाकर आपके सामने रखता हूँ । जिससे मोहरूपी अन्धकार नाश हो जाता है और ज्ञानरूपी चन्द्रमा की कला प्रकट होती है।

ॐ ह्री श्री वृषभादि वीरांतेभ्यो दीप नि० स्वाहा ।

अर्थ-श्रीवृषभादि चौबीस तीर्थंकरों को मोहरूपी अन्धकार को नाश करने के लिये दीपक जलाता हूँ ।

दशगध हुताशन माहि, हे प्रभु खेवत हों ।
मिस धूम करम जरि जाहिं, तुम पद सेवत हों ।।चौबीसों०।।

दशगन्ध=सुगन्धित धूप । हुताशन=अग्नि । खेवत हो=डालता हूँ । मिस=बहाना । धूम=धुआँ । जर जाहि=जल जाते हैं । सेवत हों=सेवा करता हूँ ।

अर्थ-हे भगवन् ! मैं अत्यन्त सुगन्धित दशाँग धूप अग्नि में डालता हूँ तथा अग्नि मे उठते हुए धुएँ के बहाने से अपने कर्मो को जलाने के लिये आपके चरणो मे धूप चढ़ाता हू ।

ॐ ह्री श्रीवृषभादि वीरांतेभ्यो धूपं नि० स्वाहा ।

अर्थ-श्री वृषभादि चौवीस तीर्थंकरों को आठो कर्मों का नाश करने के लिये धूप चढाता हूँ ।

शुचि पक्व सुरस फल सार, सब ऋतु के ल्यायो ।
देखत दृग मन को प्यार, पूजत सुख पायो ।। चौबीसों०।।

शुचि=पवित्र । पक्व=पका हुआ । सुरस=रसीले । फलसार=उत्तम फल । ल्यायो=लाया । दृग=आँख हूँ।

अर्थ—हे भगवन् ! मै पवित्र पके हुए, रसीले और देखने में आंखों तथा मन को प्यारे लगने वाले सब ऋतुओं के अच्छे २ फल आपके चरणों में चढाने के लिये लाया हूँ । जिनके द्वारा पूजा करने से मुझे सुख प्राप्त होता है।

ॐ ह्री श्री वृषभादि वीरातेभ्यो फलं नि० स्वाहा ।

अर्थ—श्रीवृषभादि चौबीस तीर्थंकरों को मोक्ष रूप फल पाने के लिये फल चढ़ाता हूँ ।

जल फल आठों शुचि सार, ताकों अर्घ करों ।
तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों ।। चौबीसों० ।।

शुचि सार=पवित्र और उत्तम । अर्घ करों=जलादि आठों द्रव्यो से अर्घ बनाता हू । अरपों=चढाता हूँ । भव तरि=ससार को पार करके । वरों=ग्रहण करूँ ।

अर्थ—हे भगवन् ! मै पवित्र और उत्तम जल फलादि आठों द्रव्यों का अर्घ बनाकर आपके चरणों में चढाता हूँ । आप भव्य जीवों को ससार से पार करने वाले है । इसलिये आपको अर्घ चढाकर संसार समुद्र को पार करके मोक्षरूपी लक्ष्मी को प्राप्त करूँगा ।

ॐ ह्री श्रीवृषभादि वीरांतेभ्यो अर्घ नि० स्वाहा ।

अर्थ—श्रीवृषभादि चौबीस तीर्थंकरों को मोक्षरूपी बहुमूल्यपद पाने के लिये अर्घ चढ़ाता हूँ ।

॥ जयमाला ॥

दोहा—श्रीमत तीरथनाथ पद, माथ नाय हित हेत ।
गाऊँ गुणमाला अबै, अजर अमरपद देत ।। १

श्रीमत=केवलज्ञान रूप लक्ष्मी के स्वामी । तीरथ नाथ=

धर्म तीर्थ के स्वामी । माथ नाय=सिर झुकाकर । हित हेत= भलाई के लिये । अजर=बुढापा रहित । अमर=मृत्यु रहित ।

अर्थ—हे भगवन् आप केवलज्ञान रूप लक्ष्मी के स्वामी और धर्म-तीर्थ के चलाने वाले है । इसलिये मै अपनी भलाई के लिये आपके चरणो में नमस्कार करके आपके गुणों की वड़ाई करता हूँ, जो बुढापा रहित और मृत्यु रहित मोक्ष स्थान को देने वाली है ॥ १

छन्द घत्तानन्द ।

जय भवतम भंजन जनमनकंजन, रंजन दिनमनि स्वच्छकरा ।
शिवमगपरकाशक अरिगननाशक, चौबीसों जिनराज वरा ॥२

तम भंजन=अज्ञान रूप अन्धकार को नाश करने वाले । जन मन कंजन=मनुष्यो के मन रूपी कमलों को । रजन=प्रसन्न करने वाले । दिनमनि=सूर्य । स्वच्छकरा=साफ किरणो के समान । शिवमगपरकाशक=मोक्ष का रास्ता दिखाने वाले । अरिगण नाशक=कर्मरूप बैरियो को नाश करने वाले । वरा= उत्तम ।

अर्थ—संसार मे सब से उत्तम ऋषभ आदि चौवीसो तीर्थं- करो की जय हो । जो ससार में फैले हुए अज्ञान रूप अन्धकार को नाश करने वाले है, तथा भव्य जीवो के मन रूप कमलों को खिलाने के लिये सूर्य की निर्मल किरणों के समान है । वे मोक्ष का रास्ता दिखाने वाले तथा कर्मरूप बैरियो को नाश करने वाले है ॥ २

पद्धरि छन्द ।

जय ऋषभदेव रिषि गन नमंत । जय अजित जीत वसु अरि तुरन्त ॥ जय सम्भव भव भय करत चूर । जय अभि-

नंदन आनंद पूर ॥ ३

नमंत=नमस्कार करते हैं। वसु अरि=आठों कर्म रूप बैरी। करत चूर=नाश करने वाले हैं। आनन्द पूर=सुखसे भरपूर।

अर्थ—संसार के सभी ऋषि-मुनि जिनको नमस्कार करते हैं ऐसे श्रीऋषभदेव भगवान् की जय हो। जिन्होंने आठों कर्म रूप बैरियों को शीघ्र ही नष्ट कर दिया है, ऐसे भ० अजितनाथ की जय हो। जो ससार के सभी प्रकार के भय को नाश करने वाले है, ऐसे भ० सभवनाथ की जय हो। तथा जो अविनाशी सुख से भरपूर है, ऐसे भ० अभिनन्दननाथ की जय हो ॥ ३

जय सुमति सुमतिदायक दयाल। जय पद्म पद्म दुति तन रसाल ॥ जय जय सुपास भव पास नाश। जय चंद चंद तन दुति प्रकाश ॥ ४

सुमतिदायक=उत्तम बुद्धि देने वाले। दयाल=दयावान्। पद्मदुति तन रसाल=कमल के समान चमकदार शरीर वाले। भव पास नाश=ससार के बन्धन को नाश करने वाले। चन्द तन दुति प्रकाश=चन्द्रमा के समान चमकदार शरीर वाले।

अर्थ—जो भव्य जीवो को उत्तम ज्ञान का उपदेश देने वाले तथा अत्यन्त दयावान् है, ऐसे भ० सुमतिनाथ की जय हो। जिनका शरीर कमल के समान चमकदार और सुन्दर है, ऐसे भ० पद्मप्रभु की जय हो। जो ससार के बन्धन को नाश करने वाले है, ऐसे भ० सुपार्श्वनाथ की जय हो। जिनका शरीर चन्द्रमा के प्रकाश के समान चमकदार है, ऐसे भ० चन्द्रप्रभ की जय हो ॥ ४

जय पुष्पदंत दुतिदंत सेत। जय शीतल शीतल गुन निकेत।

जय श्रेयनाथ नुत सहसभुज्ज । जय वासवपूजित वासुपुज्ज ॥ ५

दुति दन्त सेत=स्वच्छ दातो के समान सफेद-और चमकदार शरीर वाले । शीतल गुननि केत=शान्ति देनेवाले गुणो के घर । नुत सहस भुज्ज=हजार भुजा वाले इन्द्रादि के द्वारा नमस्कार के योग्य । वासव पूजित=इन्द्रादि से पूजे गये ।

अर्थ—जो स्वच्छ दांतो के समान सफेद और चमकदार शरीर वाले है, ऐसे पुष्पदन्त भगवान् की जय हो । जो शान्ति देनेवाले गुणो के घर है, ऐसे भ० शीतलनाथ की जय हो । जो हजार भुजा वाले इन्द्रादि से नमस्कार किये जाते हैं, ऐसे भ० श्रेयाँसनाथ की जय हो । जो इन्द्रादि के द्वारा पूजे गये है, ऐसे वासुपूज्य भगवान् की जय हो ॥ ५

जय विमलविमलपद देनहार । जय२ अनंत गुनगन अपार ।
जय धर्म धर्म शिव शर्म देत । जय शांति शाँति पुष्टी करेत ॥ ६

विमल पद=मोक्ष रूप पवित्र स्थान । देन हार=देने वाले । अपार=अनन्त । शिव शर्म=मोक्ष सुख । शान्ति पुष्टी=शान्ति की मजबूती ।

अर्थ—जो मोक्ष रूप पवित्र स्थान की देने वाले है, ऐसे भ० विमलनाथ की जय हो । जिनके गुणो का कभी अन्त नही होता ऐसे अनन्तनाथ भगवान् की जय हो । जो धर्म का उपदेश देकर मोक्ष-सुख को देने वाले हैं, ऐसे भ० धर्मनाथ की जय हो । जो आत्मा मे शान्ति-गुण को पुष्ट करते है, ऐसे शान्तिनाथ भगवान् की जय हो ॥ ६

जय कुन्थु कुन्थुवादिक रखेय । जय अर जिन वसु अरि छय करेय ॥ जय मल्लि मल्ल हत मोह मल्ल । जय

मुनिसुव्रत व्रत शल्ल दल्ल ।। ७

कुंथवादिक=कुन्थु आदि छोटे२ जीव। मल्ल=वीर योद्धा। हत मोह मल्ल=मोह रूप योद्धा को मारनेवाले। व्रत शल्लदल्ल= अहिंसादि व्रतो के दोषों को नाश करने वाले।

अर्थ—जो कुन्थु आदि बहुत छोटे जीवों की भी रक्षा करते हैं, ऐसे कुन्थुनाथ भगवान् की जय हो । जो आठों कर्म रूप बैरियों का नाश करने वाले है, ऐसे अरहनाथ भगवान् की जय हो । जो मोह रूप वीर योद्धा को मारने वाले हैं, ऐसे भ० मल्लिनाथ की जय हो । जो अहिंसादि महाव्रतों के दोषों को नाश करने वाले है, ऐसे भगवान् मुनिसुव्रतनाथ की जय हो ।। ७

जय नमि नित वासवनुत सपेम। जय नेमिनाथ वृषचक्र नेम।
जय पारसनाथ अनाथनाथ। जय वर्द्धमान शिवनगर साथ।।७

नित=हमेशा। वासव नुत=इन्द्रादि के द्वारा नमस्कार के योग्य। सपेम=प्रेम के साथ। वृष चक्रनेम=धर्म रूप रथके पहियो की धुरी। अनाथ नाथ=असहायो को सहारा देने वाले।

अर्थ—जो हर समय इन्द्रादि देवों से प्रेम के साथ नमस्कार किये जाते है, ऐसे भ० नमिनाथ की जय हो । जो धर्म रूप रथ के पहियों की धुरी के समान हैं अर्थात् धर्म की परम्परा को चलाने वाले है, ऐसे भ० नेमिनाथ की जय हो । जो असहाय जीवों को सहारा लगाने वाले है, ऐसे भ० पारवनाथ की जय हो। जो मोक्ष रूप नगर को पहुंचाने वाले उत्तम साथी हैं, ऐसे वर्द्धमान भगवान की जय हो ।। ८

घत्तानन्द छन्द।

चौबीस जिनंदा आनंदकंदा, पाप निकंदा, सुखकारी।
तिन पद जुगचंदा उदय अमंदा, वासव वंदा हितकारी ।। ९

पाप निकन्दा=पापों को नाश करने वाले । पद जुग चन्दा= दोनों चरणरूप चन्द्रमा। उदय अमन्दा=बहुत अधिक प्रकाशमान वासव वन्दा=इन्द्रादि से नमस्कार किये गए । हितकारी=भलाई करने वाले ।

अर्थ—श्री वृषभ आदि चौवीस तीर्थंकर आनन्द देने वाले और पापों का नाश करने वाले है । उनके दोनो चरण चन्द्रमा के समान अत्यधिक प्रकाशमान है, इन्द्रादि देवों से नमस्कार किये जाते हैं और भव्य जीवों का हित करने वाले है ॥ ९

ॐ ह्री श्रीवृषभादि वीरांतेभ्यो महार्घं नि० स्वाहा ।

अर्थ—श्री वृषभ आदि चौबीस तीर्थंकरों के लिए पूर्ण अर्घ अर्पण करता हूँ ।

सोरठा-भुक्ति मुक्ति दातार, चौबीसों जिनराजवर ।
तिन पद मन वच धार, जो पूजै सो शिव लहै ॥

भुक्ति मुक्ति दातार=संसार के भोग और मोक्ष को देनेवाले। तिन पद=उनके चरण । लहै=पाता है ।

अर्थ-श्री वृषभ आदि चौबीस तार्थंकर संसार के सभी सुख और मोक्ष को देने वाले है । जो जीव मन, वचन, काय से उनके चरणों की पूजा करते है, वे मोक्ष पद को प्राप्त करते हैं ॥ १०

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्थ-यह आशीर्वाद है । इसके बाद भगवान् के चरणों में पुष्पाञ्जलि छोड़नी चाहिये ।

श्री महावीर जिन पूजा (भाषा)

।। स्थापना । छन्द—मत्तगयन्द ।।

श्रीमत वीर हरं भव पीर, भरैं सुख सीर अनाकुलताई ।
केहरि अंक अरीकरदंक, नये हरिपंकति मौलि सुआई ।।
मैं तुमकौं इत थापतु हौं प्रभु,भक्ति समेत हिये हरखाई ।
हे करुणाधनधारक देव,इहां अब तिष्ठहु शीघ्रहि आई ।। १

अर्थ—हे महावीर स्वामी ! आप संसार के दुखों को दूर करने वाले और आकुलता रहित सुख-शान्तिको देने वाले है। आपकी मूर्ति पर सिंह का चिह्न बना हुआ है तथा आप कर्मरूपी हाथियों को दलन करने वाले हैं। इन्द्रादि देवो का समूह आपके चरणो मे सिर के मुकुट झुका रहे हैं। हे प्रभु ! मैं भक्ति सहित प्रसन्न मन से यहाँ आपकी स्थापना करता हूँ। हे दया रूपी धन के श्री महावीर स्वामी अब आप यहां शीघ्र ही पधारिए।

ॐह्री श्रीवर्द्धमान जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

अर्थ—हे श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र ! आप यहाँ आइये आइये। (यह आह्वानन है)

ॐह्रीं श्रीवर्द्धमान जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

अर्थ—हे श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र ! आप यहाँ ठहरिये ठहरिये। (यह स्थापना है)

ॐह्रीं श्रीवर्द्धमान जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्

अर्थ—हे श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र ! आप यहाँ मेरे पास पधारिये (यह सन्निधिकरण है)

॥ अष्टक ॥

क्षीरोदधि सम शुचि नीर, कंचन भृङ्ग भरों।
प्रभु वेग हरो भव पीर, यातैं धार करों ॥
श्रीवीर महा अतिवीर, सन्मति नायक हो।
जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्मतिदायक हो ॥ २ ॥

अर्थ—हे वीर प्रभु । मै क्षीर समुद्र (जिसका जल दूध के समान सफेद है(के जल के समान पवित्र जल को सोने के कलश मे भर कर उसकी धार आपके चरणों मे छोड़ रहा हूँ, इसलिए आप मेरे ससार के दु खो को शीघ्र ही दूर कर दीजिए।

हे महावीर स्वामी ! आप वहुत ही वीर है, उत्तम ज्ञान के स्वामी है, धैर्य आदि गुणो से वृद्धि को प्राप्त हो रहे है और उत्तम ज्ञान के देने वाले है, इसलिये आपकी जय हो ॥ १

ॐह्री श्री महावीर जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय कल निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ—मै श्री महावीर स्वामी को अपने जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु को नाश करने के लिये जल चढाता हूँ।

मलयागिर चन्दन सार, केशर संग घिसा।
प्रभु भव आताप निवार, पूजत हिय हुलसा ॥ श्री०

अर्थ–हे वीर प्रभु ! मै मलयागिरि पर उत्पन्न हुए उत्तम चन्दन को केशर के साथ घिस कर उसके द्वारा प्रसन्न मन से आपकी पूजा करता हूँ । इसलिए आप मेरे ससार के दु:खो को दूर कर दीजिए।

हे महावीर० ॥ २

ॐ ह्ली श्रीमहावीर जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं नि०

अर्थ—मैं श्री महावीर स्वामी को अपने ससार के दुःखों को दूर करने के लिये चन्दन चढ़ाता हू।

तंदुल सित शशि सम शुद्ध, लीनों थार भरी।
तसु पुञ्ज धरों अविरुद्ध, पावों शिवनगरी ॥ श्री०

अर्थ—हे वीर प्रभु! मै चन्द्रमा के समान सफेद, और शुद्ध तन्दुल (सफेद कच्चे चावल) थाल में भरकर उनके पुन्ज अर्थात् ढेर आपके चरणों के आगे चढाता हूँ, जिससे मोक्ष रूप नगर मै पहुंच जाऊं।

हे महावीर० ॥ ३

ॐ ह्ली श्री महावीर जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्ताय अक्षतान् नि०

अर्थ—मैं श्री महावीर स्वामी को अक्षयपद पाने के लिये अक्षत चढाता हूं।

सुर तरु के सुमन समेत, सुमन सुमन प्यारे।
सो मनमथ भंजन हेत, पूजों पद थारे ॥ श्री०

अर्थ—हे वीर प्रभु! मैं कामदेव को नाश करने के लिये कल्पवृक्ष के फूलों के समान और मन को अच्छे लगने वाले फूलों से आपके चरणों की पूजा करता हू।

हे महावीर स्वामी० ॥ ४

ॐ ह्ली श्रीमहावीर जिनेन्द्राय कामवाणविध्वसनाय पुष्प नि०

अर्थ—मैं श्रीमहावीर स्वामी को कामदेव के वाणों को नाश करने के लिये पुष्प चढाताहू।

रस रज्जत सज्जत सद्य, मज्जत थार भरी ।

पद जज्जत रज्जन-अद्य, भज्जत भूख अरी ।। श्री०

अर्थ—हे वीर प्रभु! मै रस से भरे और शीघ्र ही तैयार किये हुए व्यञ्जनो अर्थात् पकवानो को शुद्ध थाल मे भर कर आज प्रेम के साथ आपके चरणों की पूजा करता हूँ, जिससे भूख रूपी रोग नाश को प्राप्त हो जावे।

श्री महावीर० ।। ५

ॐ ह्री श्रीमहावीर जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि०।

अर्थ—मैं श्री महावीर स्वामी को अपने भूख रूपी रोग को नाश करने के लिए नैवेद्य चढाता हूँ।

तम खंडित मंडित नेह, दीपक जोवत हों ।

तुम पदतर हे सुख गेह, भ्रमतम खोवत हों ।। श्री०

अर्थ—हे वीर प्रभु ! मै अन्धकार को नाश करने वाला और घी से भरा हुआ दीपक (आपके चरणो के शामने जला रहा हूँ जिसके द्वारा अपने अज्ञान रूप अन्धकार को नाश करता हूँ।

श्री महावीर० ।। ६

ॐ ह्री श्रीमहावीर जिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं नि०

अर्थ—मै श्री महावीर स्वामी को अज्ञान रूपी अन्धकार को नाश करने के लिए दीप चढाता हूं।

हरि चन्दन अगर कपूर, चूर सुगन्ध करा ।

तुम पदतर खेवत भूरि, आठों कर्म जरा ।। श्री०

अर्थ—हे वार प्रभु ! मैनेहरिचन्दन, अगर और कपूर आदि सुगन्धित वस्तुओं का चूर्ण इकट्ठा किया है। मैं अपने आठों कर्मो

को जलाने के लिये यह सुगन्धित धूप के आचरणों के आगे अग्नि में जला रहा हूँ ।

श्री महावीर० ॥ ७

ॐ ह्री श्रीमहावीर जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं नि०

अर्थ—मै श्रीमहावीर स्वामी को अपने आठों कर्मों का नाश करने के लिए धूप चढ़ा रहा हूँ ।

रितुफल कल बर्जित लाय, कंचन थार भरा ।
शिव फलहित हे जिनराय,तुम ढिंग भेंट धरा ॥ श्री०

अर्थ—हे वीर प्रभु ! मैं उत्तम और अखण्ड सब ऋतुओं के फल सोने के थाल में रख रहा हूँ । हे जिनराज ! मैं मोक्ष रूप फल पानेके लिए वे उत्तम फल तुम्हारे चरणो पर चढ़ा रहा हूँ ।

श्री महावीर० ॥ ८

ॐ ह्री श्रीमहावीर जिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्ताय फलं नि०

अर्थ—मै श्री महावीर स्वामी को मोक्ष रूपी फल प्राप्त करने के लिए फल चढ़ा रहा हूँ ।

जल फल वसु सजि हिम थार, तन मन मोद धरों ।
गुण गाऊँ भव दधि पार, पूजत पाप हरो ॥ श्री०

अर्थ– हे वीर प्रभु ! मै जल-फलादि आठों द्रव्यों को सोने के थाल में सजाकर शरीर और मन में प्रसन्न हो रहा हूँ । मैं आप के गुणों की प्रशसा कर रहा हूँ, आप मुझको ससार-समुद्र से पार कीजिए । आपकी पूजा करने से मै पापों को नष्ट कर दूंगा ।

श्री महावीर० ॥ ९

ॐ ह्री श्री महावीर जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्ताय अर्घं नि० ।

अर्थ—मैं श्री महावीर स्वामी को अमूल्य मोक्षपद पाने के लिए अर्घ चढ़ा रहा हूँ।

पञ्च कल्याणक ।। राग ठप्पा ।।

मोहि राखो हो सरना, श्रीवर्द्धमान जिनराय जी। मोहि०

अर्थ—हे श्री वर्द्धमान स्वामी आप मुझे अपनी शरण मे रखिए।

गर्भ साढ़ सित छट्ठ लियो तिथि, त्रिशला उर अघ हरना।
सुर सुरपति तित सेव कर्‌यो नित, मैं पूजों भवतरना ।। मोहि०

अर्थ—आप आषाढ शुक्ला षष्ठी के दिन त्रिशला महारानी के पवित्र गर्भ में आये थे। उस समय इन्द्रादि देवो ने उनकी लगातार सेवा की थी। मैं भी ससार से पार होने के लिए आप की पूजा करता हूँ। हे वर्द्धमान स्वामी! आप मुझे अपनी शरण मे लीजिए ।। १

ॐ ह्रीं आषाढ शुक्ला षष्ठयाँ गर्भमगल प्राप्ताय श्रीमहावीर जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपा०।

अर्थ—मै आषाढ शुक्ला षष्ठी के दिन गर्भ मगल को प्राप्त होने वाले श्रीमहावीर स्वामी को अर्घ चढाता हू।

जनम चैत सित तेरसके दिन, कुण्डलपुर कनवरना।
सुरगिरि सुरगुरु पूज रचायो, मैं पूजों भवहरना ।। मोहि०

अर्थ—आपने चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन सोने के समान कुण्डलपुर नगर में जन्म लिया था। उस समय इन्द्रादि देवो ने सुमेरु पर्वत की पाण्डुक शिला पर आपकी पूजा की थी। इसलिए

मै भी ससार से छुटकारा पाने केलिए आपकी पूजा करताहूं।
हे वर्द्धमान० ॥

ॐ ह्री चैत्र शुक्ला त्रयोदश्यां जन्म मंगल प्राप्ताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घं नि०।

अर्थ—मै चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन जन्ममंगल को प्राप्त होने वाले श्रीमहावीर स्वामीं को अर्घ चढ़ाता हूं।

मंगसिर असित मनोहर दसमी, ता दिन तप आचरना।
नृपकुमार घर पारन कीनों, मैं पूजों तुम चरना ॥ मोहि०

अर्थ—आपने मगसिर कृष्णा दशमी के दिन तपस्या ग्रहण की थी तथा कुमार राजा के घर पर आहार लिया था। इसलिए मै भी आपके चरणो की पूजा करता हू। हे वर्द्धमान स्वामी! आप भुझे अपनी शरण में रखिए।

ॐ ह्री मार्गशीर्प कृष्णा दशम्यां तपोमंगल मंडिताय श्रीमहावीर जिनेंद्राय अर्घ नि०।

अर्थ—मैं मंगसिर कृष्णा दशमी के दिन तप मंगल को प्राप्त होनें वाले श्रीमहावीर स्वामी को अर्घ चढ़ाता हूँ।

शुक्ल दशै बैसाख दिवस अरि, घात चतुक छय करना।
केवल लहि भवि भव सर तारे, जजों चरन सुख भरना ॥मो०

अर्थ—आपने वैसाख सुदी दशमी के दिन चार घातिया कर्मो को नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया और भव्यीवों को ससार समुद्र से पार करते हैं। इसलिए मै आपके चरणों की पूजा करता हूँ। हे वर्द्धमान .....।

ॐ ह्री बैसाख शुक्ल दशम्या केवलज्ञान प्राप्ताय श्रीमहावीर

जिनेन्द्राय अर्घ निर्वं० ।

अर्थ—मै बैसाख सुदी दशमी के दिन ज्ञान-मंगल को प्राप्त होने वाले श्रीमहावीर स्वामी को अर्घ चढ़ाता हूँ ।

कार्तिक श्याम अमावश शिवतिय, पावापुरतें वरना ।
गन फनिवृन्द जजे तित बहुविध, मैं पूजौं भय हरना ।। मो०

अर्थ—आपने कार्तिक कृष्णा अमावस को पावापुर क्षेत्र से मोक्ष प्राप्त किया था । उस समय गणधर और धरणीन्द्र आदि क समूह ने बहुत प्रकार से आपकी पूजा की थी । इसलिए मैं भी ससार के भय से छूटने के लिए आपकी पूजा करता हूँ । श्री वर्द्धमान .....।। ५

ॐह्रीं कार्तिक कृष्णा ऽमावस्याया मोक्षमंगल मडिताय श्री महावीर जिनेद्राय अर्घ नि०।

अर्थ—मैं कार्तिक कृष्णा अमावस्या के दिन मोक्ष-मगल को प्राप्त होने वाले महावीर स्वामी को अर्घ चढ़ाता हूँ ।

जयमाला । छन्द हरिगीता ।। २८ मात्रा ।

गनधर असनिधर चक्रधर, हरधर गदाधर वरवदा ।
अरु चाप धर विद्या सुधर, त्रिसूलधर सेवहिं सदा ।।

दुख हरन आनन्द भरन तारन, तरन चरन रसाल है ।
सुकमाल गुन मनि माल उन्नत, भालकी जयमाल है ।।

अर्थ—आपकी गणधर, अ ।निधर, चक्रधर, हलधर गदाधर, चापधर, विद्याधर और त्रिशूलधर आदि बलवान महापुरुष सदैव सेवा करते है । आपके चरण जीव मात्र के दुःख दूर करने

याले, आनन्द देने वाले, शरणागत को पार करने वाले और सुन्दर हैं। हे भगवान्। आप कोमल शरीर वाले, गुणों के समूह को धारण करने वाले, और ऊचे मस्तक वाले है, इसलिये मै आपके गुणों की जयमाला वर्णन करता हूं।

॥ छन्द घत्तानन्द ॥

जय त्रिशलानन्दन, हरिकृत वन्दन, जगदानन्दन चंदवरं।
भव ताप निकंदन तनकनमंदन, रहित सपंदन, नयनधरं ॥

अर्थ—आप त्रिशला माता को प्रसन्न करन वाले है, इन्द्रादि देवताओं से नमस्कार किये गये है और उत्तम चन्द्रमा के समान ससार को आनन्द देने वाले है। आप ससार के दुखों को नाश करने वाले, प्रकाशमान शरीर वाले और निमेष रहित नेत्रो को धारण करने वाले हैं।

॥ छन्द त्रोटक ॥

जय केवलभानु कला सदनं, भविकोक विकासन कन्दवनं।
जगजीत महारिपु मोह हरं, रज ज्ञान दृगांवर चूर करं ॥

अर्थ—आपकेवलज्ञान रूपी सूर्य की किरणों के घर है, भव्य जीव रूप चकवा पक्षियों को प्रसन्न करन के लिये कमल के बन के समान हैं, ससार को जातन वाले मोह रूपी बलवान् शत्रु को हराने वाले हो और ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अन्तराय कर्म का नाश करने वाले हो। इसलिए आपकी जय हो।

गर्भादिक मंगल मंडित हो, दुख दारिद्र को नित खंडित हो।
जगमांहि तुमी सत पंडित हो, तुमही भव भाव विहंडित हो ॥

अर्थ—आप गर्भादिक पाच मंगलों से शोभायमान हो, दु.ख

और गरीबो को सदा नाश करने वाले हो । आप ही ससार मे सच्चे विद्वान् हो और आप ही ससार के पदार्थों की मोह माया को आत्मा से दूर करने वाले हो । इसलिए आपकी जय हो ।

हरिवंश सरोजनको रवि हो,बलवंत महंत तुम्हीं कवि हो।
लहि केवल धर्म प्रकाश कियो,अबलौं सोई मारग राजतियो ।।

अर्थ—आप हरिवश रूपी कमलो को खिलाने के लिये सूर्य के समान हो, आपबहुत ही बलवान् और बड़े भारी कवि हो । आपने केवलज्ञान को प्राप्त कर धर्म प्रचार किया था, तथा आपका चलाया हुआ वही धर्म का मार्ग अब भी शोभा को प्राप्त हो रहा है ।

पुनि आप तने गुन मांहि सही,सुर मगन रहैं जितने सबही।
तिनकी बनिता गुन गावत हैं,लय माननिसों मनभावत हैं ।।

अर्थ—ससार के सभी देवगण आपके गुणो की बड़ाई करने में मग्न रहते है । उनकी स्त्रियाँ भी ताल और लय के साथ मन गाकर आपके गुणों की बडाई करती है ।

पुनि नाचतरंग उमंग भरी, तुअ भक्ति विषै पग येम धरी ।
झननं झननं झन झननं, सुर लेत तहां तननं तननं ।।

अर्थ—हे वीर प्रभु ! फिर देवगण आनन्द और उमंग के साथ नाचते हैं और तुम्हारी भक्ति में इस प्रकार कदम रखते है देवता लोग नाचते समय अनेक प्रकार के बाजो से झनन झनन का शब्द करते हैं और तान लगाकर नाचते हैं ।

घननं घननं घनघंट बजे, द्दमद्द द्दमद्द मिरदंग बजे ।
गननागन गर्भगता सुगता, ततता ततता अतता वितता ।।

अर्थ—घनन घनन की घनी आवाज से घटे बज रहे हैं .... (तबले) द्रमदं द्रमदं की आवाज से शोभा पा रहे हैं, और आकाश के आंगन में ततत अतत और वितत की आवाज सुनाई दे रही है ।

धृगतां धृगतां गत बाजत हैं, सुरताल रसाल जु छाजत हैं ।
सननं सननं सननं नभ में, रक रूप अनेक जु धारि भ्रमें ॥

अर्थ—धृगता धृगता की आवाज से बाजे बज रहे हैं, और सुरताल (सारगी) की मीठी आवाज शोभा पा रही है । देवता लोग अनेक प्रकार के रूप धारण करके सनन सनन की आवाज करते हुए आकाश में घूम रहे है ।

कई नारि सु बीन बजावति हैं, तुमरो जस उज्जल गावति हैं ।
करताल विषैं करताल धरैं, सुरताल विशाल जु नाद करैं ॥

अर्थ—कई देविया सुन्दर बीन बजाकर तुम्हारी निर्मल वड़ाई के गीत गा रही हैं । वे देवियां अपने हाथों में करताल धारण करती हैं, और गम्भीर आवाज से सुरताल (सारंगी) बजा रही है ।

इन आदि अनेक उछाह भरी, सुर भक्ति करैं प्रभुजी तुमरी ।
तुमही जगजीवनिके पितु हो, तुमही बिन कारनतें हितु हो ॥

अर्थ—हे महावीर प्रभु! इस प्रकार देवगण बहुत अधिक उत्साह के साथ आपकी भक्ति करते है । आप ही ससार भर के प्राणियों के पिता हो और आप ही विना मतलब भलाई करने वाले मित्र हो ।

तुमही सब विघ्नविनाशन हो, तुमही निज आनंद भासन हो ।
तुमही चितचिंततदायक हो, जगमांहिं तुम्हीं सब लायक हो ॥

अर्थ—आप ही सब विघ्नों को नाश करने वाले हो, और आप ही आत्मा के आनन्द से शोभा पा रहे हो। आप ही हमको मन में सोची हुई वस्तुएँ देने वाले हो और संसार में सभी काम करने के लिए समर्थ हो।

तुमरे नपमंगलमाहिं सही, जिय उत्तम पुन्न लियो सब ही।
हमको तुमरी शरनागत है, तुमरे गुन में मन पागत है॥

अर्थ—आपके गर्भादि पाँचो मगलों में सभी भव्य जीवो ने उत्तम पुण्य कर्म का सचय किया है। हम सब आपकी शरण में आए हुए है और आपके गुणो की प्रशसा करने में हमारा मन लग रहा है।

प्रभु मो हिय आप सदा बसिये, जबलों वसुकर्म नहीं नसिये।
तबलों तुम ध्यान हिये बरतौ, तबलों श्रुत चिंतन चित्त रतौ॥

अर्थ—हे वीर प्रभु! जब तक मेरे आठो कर्म नष्ट नही होते तब तक आप हमेशा मेरे मन में निवास करिये। तब तक मेरे मन में तुम्हारा ध्यान बना रहे, और तभी तक मेरा मन शास्त्र स्वाध्याय मे भी लगा रहे।

तबलों व्रत चारित चाहतु हौं, तबलों शुभ भाव सुगाहतु हौं।
तबलों सतसंगति नित्त रहौ, तबलों मम संजम चित्त गहौ॥

अर्थ-तभी तक मैं अहिंसादि पांचो व्रत और महाव्रत रूप चारित्र का पालन करना चाहता हू और तभी तक मन मे उत्तम भाव धारण करना चाहता हूँ। तभी तक मुझको अच्छी संगति हमेशा मिलती रहे और तभी तक मेरा मन संयम ग्रहण करता रहे।

जबलों नहिं नाश करौं अरिको, शिवनारि करौं समता धरिको।

यह द्यो तबलों हमको जिनजी, हम जाचतु हैं इतनी सुनजी ।।

अर्थ–जब तक मै मन में समता भाव धारण करके कर्म रूपी बैरियो का नाश न कर डालूं, और जब तक मोक्ष पद को प्राप्त नही करलूं, तब तक आप हमको यह सब वस्तुएं दीजिये । हम आपसे विनय पूर्वक प्रार्थना कर रहे हैं । इसलिए आप कृपा कर के हमारी प्रार्थना सुन लीजिए ।

छन्द घत्तानन्द ।

श्रीवीर जिनेशा, नमित सुरेशा, नाग नरेशा भगति भरा ।
'वृन्दावन' ध्यावै, विघन नशावै, बांछित पावै शर्म वरा ।।

अर्थ–महावीर प्रभु! आप इन्द्र और धरणीन्द्र आदि के द्वारा भक्ति भाव से नमस्कार किए गये हैं । 'वृन्दावन' कवि कहते हैं कि जो भव्य जीव आपका ध्यान करते हैं, वे सभी विघ्नो को दूर करके इच्छानुसार उत्तम सुख को प्राप्त होते है ।

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय महार्घ्यं नि० ।

अर्थ—मैं श्रीमहावीर स्वामी को महार्घ चढ़ाता हूँ ।

दोहा–श्रीसनमति के जुगल पद, जो पूजैं धरि प्रीत ।
'वृन्दावन' सो चतुर नर, लहै मुक्ति नवनीत ।।

अर्थ–जो सज्जन श्रीमहावीर स्वामी जी के दोनों चरणों की भक्ति भाव से प्रीत लगाकर पूजते है । महाकवि श्री वृन्दावनजा कहते हैं कि वह बुद्धिमान पुरुष मोक्ष को अवश्य पाते है ।

इत्याशीर्वादः (पुष्पाजलि क्षिपेत्)

अर्थ–यह आशीर्वाद है । इसके बाद भगवान् के चरणों में पुष्पाञ्जलि छोड़नी चाहिये ।

महार्घ

गीता छन्द

मैं देव श्री अर्हन्त पूजूं, सिद्ध पूजूं चाव सों।
आचार्य श्री उवझाय पूजूं, साधु पूजूं भाव सों॥
अर्हन्त-भाषित बैन पूजूं, द्वादशांग रचे गनी।
पूजूं दिगम्बर गुरुचरन, शिव हेत सब आशा हनी॥

सर्वज्ञ भाषित-धर्म दश विधि, दयामय पूजूं सदा।
जजि भावना षोडश रतनत्रय, जा बिना शिव नहिं कदा॥
त्रैलोक्य के कृत्रिम अकृत्रिम, चैत्य चैत्यालय जजूं।
पनमेरु नन्दीश्वर जिनालय, खचर सुर पूजित भजूं॥

कैलाश श्री सम्मेद श्री, गिरनार गिरि पूजूं सदा।
चम्पापुरी पावापुरी पुनि, और तीर्थ सर्वदा॥
चौवीस श्री जिनराज पूजूं, बीस क्षेत्र विदेह के।
नामावली इक सहस वसु, जय होय पति शिवगेह के॥

दोहा।

जल गन्धाक्षत पुष्प चरु, दीप-धूप फल लाय।
सर्व पूज्य पद पूज हूँ, बहु विध भक्ति बढ़ाय॥

भावार्थ—मैं अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधुओ को भक्ति भाव से पूजता हूँ।

अरहन्त की द्वादशांग वाणी को, दिगम्बर मुनियों के चरणों को, सर्वज्ञ के कहे हुए दयामय दश धर्मो को पूजता हूं। सोलह कारण भावनाओ को और रत्नत्रय (सम्यक् दर्शन, ज्ञान चारित्र) को पूजता हूं।

तीनों लोकों के प्राकृतिक तथा बनाये हुए चैत्यालय और मन्दिरों को पूजता हूं। पांचों मेरु और नन्दीश्वर द्वीप के बावन चैत्यालय जो कि देवों से पूजित है, उनको पूजता हूं।

श्री कैलाश, श्री सम्मेद शिखर, श्री गिरनार, चम्पापुरी व पावापुरी और सब तीर्थो को पूजता हूं। चौबीस तीर्थंकरो को, विदेह क्षेत्र के बीस तीर्थंकरों को और भगवान के एक हजार आठ नामों को बार बार पूजता हूँ।

जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल आदि आठों द्रव्यों से सब ही पदों को बहुत ही भक्ति भाव से पूजता हू।

महा अर्घ चढ़ाना चाहिये।
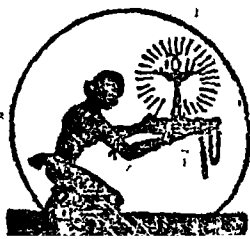
शांति पाठ भाषा ।

(शांति पाठ बोलते समय पुष्पक्षेपण करते रहना चाहिए)

शान्तिनाथ मुख शशि उनहारी, शील गुणव्रत संयम धारी ।
लखन एकसौ आठ विराजैं, निरखत नयन कमलदल लाजैं ॥

अर्थ—हे शान्तिनाथ भगवान् ! आपका चन्द्रमा के समान निर्मल मुख है । आप शील, गुण, व्रत और सयम के धारक है । आपके देह में १००८ शुभ लक्षण हैं और आपके नेत्र कमल के समान हैं । आप मुनियो में श्रेष्ठ हैं, इसलिये आपको नमस्कार करता हूँ ।

पंचम चक्रवर्ति पदधारी, सोलम तीर्थंकर सुखकारी ।
इन्द्रनरेन्द्र पूज्य जिननायक, नमो शांतिहित शांति विधायक ॥

अर्थ—आप पाँचवे चक्रवर्ती है और आपकी इन्द्र तथा नरेन्द्र सदा पूजन करते है । मै चारों गणो (मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका) की शान्ति की इच्छा से शान्ति के कर्त सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ को नमस्कार करता हू ।

दिव्य विटप पुहुपनकी वरषा, दुन्दुभि आसन वाणी सरसा ।
छत्र चमर भामण्डल भारी, ये तुव प्रातिहार्य मनहारी ॥

अर्थ—१ अशोक वृक्ष, २ देवों द्वारा की गई फूलों की वर्षा, ३ दुन्दुभि (नगाड़ों) का बजना, ४ सिंहासन, ५ एक योजन तक दिव्यध्वनि का पहुंचना, ६ शिर पर तीन छत्रो का होना, ७ चमरों का ढुरना और ८ भामण्डल का होना, ये आठ प्रातिहार्य होते हैं । इनसे आप शोभायमान है ।

शाँति जिनेश शांति सुखदाई, जगत पूज्य पूजों शिरनाई ।

परमशांति दीजैं हम सबकों, पढ़ें तिन्हें पुनि चार संघ को ॥

अर्थ-ऐसे संसार से पूजनीय और शान्ति करने वाले श्री शान्तिनाथ तीर्थंकर को मस्तक नमाकर नमस्कार करता हूँ। वे शान्तिनाथ भगवान् चतुर्विध सघ को, मुझे और पढने वाले को सदा परम शाति प्रदान करे।

पूजैं जिन्हैं मुकट हार किरीट लाके,
इन्द्रादि देव अरु पूज्य पदाब्ज जाके।
सो शान्तिनाथ वर वंश जगत प्रदीप,
मेरे लिये करैं शांति सदा अनूप ॥

अर्थ-मुकुट, कुण्डल, हार और रत्नों को धारण करने वाले, इन्द्र इत्यादि देव, जिनके चरण कमलों की पूजा करते है। ऐसे इक्ष्वाकु आदि उत्तम वशो में उत्पन्न होने वाले और ससार को प्रकाशित करने वाले तीर्थंकर मुझे शान्ति प्रदान करे।

संपूजकोंको प्रतिपालकोंको, यतीनको औ यति नायकों को।
राजा प्रजा राष्ट्र सुदेशको ले, कीजैं सुखी हे जिन शांतिको दे।

अर्थ—हे जिनेन्द्रदेव! आप पूजन करनेवालों को, रक्षा करने वालों को, आचार्यों को, सामान्य मुनियों को देश, राष्ट्र, नगर और राजा को सदा शान्ति प्रदान करे।

होवे सारी प्रजा को सुख, बलयुत हो धर्मधारी नरेशा।
होवे वर्षा समैं पै, तिल भर न रहै, व्याधियों का अंदेशा ॥
होवे चोरी न जारी, सुखमय वरतै, हो न दुष्काल भारी।
सारे ही देश धारैं जिनवर वृष को, जो सदा सौख्यकारी ॥

अर्थ–सब प्रजा का कुशल हो, राजा बलवान और धर्मात्मा हो, मेघ (बादल) समय२ पर बरसा करे, सब रोगो का नाश हो, ससार में प्राणियो को एक क्षण भी दुर्भिक्ष, चोरी और बीमारी आदि के दु.ख न हों। और सब ससार को सुख देने वाले जिनेन्द्र भगवान् का धर्मचक्र सदा वर्तमान रहे।

दोहा–घाति कर्म जिन नाश करि, पायो केवलज्ञान।
शांति करो सब जगत में, वृषभादिक जिनराज ॥

अर्थ–चार घातिया कर्मो को नष्ट करने वाले और केवल-ज्ञान रूपी सूर्य अर्थात् केवलज्ञानी वृषभ आदि जिनेन्द्र भगवान् जगत् को शान्ति प्रदान करे।

शास्त्रों का हो पठन सुखदा, लाभ सत्संगती का।
सद्व्रतों का सुजस कहके, दोष ढांकू सभी का ॥
बोलूं प्यारे वचन हितके, आपका रूप ध्याऊं।
तौलों सेऊँ चरण जिनके, मोक्ष जौलों न पाऊँ ॥

अर्थ—हे भगवान्! शास्त्रो का पढ़ना, जिनदेव को नमस्कार और सदा उत्तम पुरुषो की सगति रहे। सदाचारी पुरुषो का गुण गान करे। सभी जीवों को हित करने वाले वचन बोले और आत्मा के स्वभाव को पाने की भावना रखे। जब तक हमे मोक्ष की प्राप्ति न हो जावे तब तक प्रत्येक जन्म में हमें इनका सदा लाभ हो।

तव पद मेरे हिय में, मम हिय तेरे पुनीत चरणों में।
तब लौं लीन रहों प्रभु, जबलौं पाया न मुक्ति पद मैंने ॥

अर्थ—हे जिनेद्रदेव! तब तक आपके दोनो चरण मेरे हृदय

में विराजमान रहैं और मेरा हृदय आपके चरणों में लीन रहे जब तक मुझे आपके समान मोक्ष की प्राप्ति न हो जावे।

अक्षर पद मात्रा से दूषित, जो कछु कहा गया मुझ से।
क्षमा करो प्रभु सो सब, करुणाकरि पुनि छुड़ावहु भव दुखसे॥
हे जगवंद्य जिनेश्वर, पाऊं तव चरण शरण बलिहारी।
मरण समाधि सुदुर्लभ, कर्मों का क्षय सुबोध सुखकारी॥

अर्थ—हे परमात्मन्! मैंने आपकी पूजा करने में अक्षर, पद और मात्रा से हीन (कम) जो कुछ कहा हो उसे आप क्षमा कर, मेरे ससार के दुखों का नाश कर दे। हे जगद्बन्धु! आपके चरणों की कृपा से मेरे दुःखों का नाश हो, समाधिमरण प्राप्त हो और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति हो।

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

विसर्जन पाठ ।

दोहा—बिन जाने वा जान के, रही टूट जो कोय ।
तुव प्रसाद से परमगुरु, सो सब पूरन होय ॥ १

अर्थ—हे जिनेन्द्र भगवान् ! आपकी पूजा करने में जानकर अथवा बिना जाने, जो कुछ शास्त्र में बताया गया है, वह नहीं कर पाया होऊँ तो वह सब आपकी कृपा से पूर्ण ही समझा जावे ।

पूजन विधि जानों नहीं, नहिं जानों आह्वान ।
और विसर्जन हूँ नहीं, क्षमा करो भगवान ॥ २

अर्थ—हे परमेश्वर ! आह्वान करने की विधि मुझे मालूम नहीं है, पूजा करना भी नहीं जानता और न विसर्जन करना ही आता है । इसलिए आप मुझे क्षमा कीजिए !

मन्त्रहीन धनहीन हूँ, क्रियाहीन जिनदेव ।
क्षमा करहु राखहु मुझे, देहु चरण की सेव ॥ ३

अर्थ—हे जिनेन्द्र देव ! मैंने मन्त्र रहित, क्रिया रहित और द्रव्य रहित आपकी पूजा की है, वह सब क्षमा कीजिये और सदा संसार से मेरी रक्षा कीजिये ।

आये जो जो देवगण, पूजे भक्ति प्रमान ।
ते सब जावहु कृपाकर, अपने अपने स्थान ॥ ४

अर्थ—हे परमात्मन् ! मैंने पहिले जिन-जिन देवों का आह्वान किया, उनकी क्रम से भक्तिपूर्वक पूजा की । अब कृपाकर सब देव अपने अपने स्थान पर पधारें ।

इष्ट छत्तीसी ।

सोरठा—प्रणमूं श्रीअरहंत, दयाकथित जिनधर्म को ।
गुरु निरग्रन्थ महंत, अवर न मानूं सर्वथा ॥ १
बिन गुण की पहिचान, जानै वस्तु समानता ।
तातें परम बखान, परमेष्ठी गुण को कहूँ ॥ २
रागद्वेषयुत देव, मानैं हिंसा धर्म पुनि ।
सग्रन्थगुरु की सेव, सो मिथ्याती जग भ्रमै ॥ ३

मैं श्री अरहन्त देव को, दयामय श्री जिनधर्म को और निर्ग्रन्थ मुनियों को ही नमस्कार करता हूं ।

जो कोई राग द्वेष सहित देवों को और हिंसामय धर्म को और परिग्रह वाले गुरुओं को मानते हैं वो मिथ्यातीजीव जग में भ्रमते रहते है ।

सच्चे देव गुरु शास्त्रों के ठीक-ठीक गुणों को जाने बिना हमें सच्यी श्रद्धा नही हो सकती है । इसलिए इस इष्ट छत्तीसी में श्री महाकवि 'बुद्धजनजी' ने पंच परमेष्ठी के १४३ गुणो का वर्णन किया हे ।

इन गुणो को ग्रहण करने के लिए ही हम दर्शन, पूजा आदि करते हैं ।

यह जानने योग्य बातें हमें अवश्य जाननी चाहिए :—

अरहन्त के ४६ गुण :— ३४ अतिशय (१० जन्म के, १० केवलज्ञान के, १४ देवकृत) ८ प्रातिहार्य, ४ अनन्त चतुष्टय और १८ दोष रहित (सिद्धों के ८ गुण) ।

आचार्यों के ३६ गुण:—१२ तप, १० धर्म, ५ आचार, ६ आवश्यक, ३ गुप्ति।

उपाध्याय के २५ गुण.— ११ अग, १४ पूर्व।

सर्व साधु के २८ गुण.— ५ महाव्रत, ५ समिति, ५ इन्द्रिय दमन, ६ आवश्यक, ७ शेष गुण।

इनको विशेष जानने के लिए धर्म शास्त्रो का अध्ययन करना चाहिए।

दोहा—चौतीसों अतिशय सहित, प्रातिहार्य पुनि आठ।
अनंत चतुष्टय गुणसहित, छोयालीसों पाठ ॥ ४

अर्थ—३४ अतिशय, ८ प्रातिहार्य, ४ अनन्त चतुष्टय—ये अरहन्त के ४६ मूलगुण होते है। अव इनका भिन्न भिन्न वर्णन करते है॥

अतिशय रूप सुगन्ध तन, नाहिं पसेव निहार।
प्रियहित वचन अतीत बल, रुधिर श्वेत आकार॥ ५
लच्छन सहसरु आठ तन, समचतुष्कसंठान।
वज्रवृषभनाराच युत, ये जनमत दश जान॥ ६

अर्थ—१ अत्यन्त सुन्दर शरीर, २ अति सुगन्ध शरीर, ३ पसेव रहित शरीर, ४ मलमूत्र रहित शरीर, ५ हित मित प्रिय वचन बोलना, ६ अतुल बल, ७ दुग्धवत् श्वेत रुधिर, ८ शरीर मे एक हजार आठ लक्षण, ९ समचतुरस्र-सस्थान, १० वज्रवृषभ नाराचसंहनन ये दश अतिशय अरहन्त भगवान के जन्म से ही उत्पन्न होते है।

योजन शत इकमें सुभिख, गगन गमन मुख चार।
नहिं अदया, उपसर्ग नहिं, नाहीं कवलाहार ॥ ७
सब विद्या ईश्वरपनों, नाहिं बढ़े नख केश।
अनिमिष दृग छायारहित, दश केवल के वेश ॥ ८

अर्थ—१ एकसौ योजन मे सुभिक्षता, अर्थात् जिस स्थान में केवली हो उनसे चारों तरफ सौ-सौ योजन में सुकाल होता है, २ आकाशमें गमन, ३ चार मुखो से दीखना, ४ अदया अभाव, ५ उपसर्ग रहित, ६ कवल (ग्रास) वर्जित आहार, ७ समस्त विद्याओ का स्वामीपना, ८ नख केशों का नहीं बढना, ९ नेत्रों की पलके नही झपकना, १० छायारहित शरीर—ये दस अतिमय केवलज्ञान उत्पन्न होने से प्रगट होते हैं।

देवरचित हैं चार दश, अर्द्धमागधी भाष।
आपस मांहीं मित्रता, निरमल दिश आकाश ॥ ९
होत फूल फल ऋतु सबै, पृथ्वी कांच समान।
चरण कमलतल कमल ह्वै, नभ तैं जय२ बान ॥ १०
मन्द सुगन्ध बयारि पुनि, गंधोदक की वृष्टि।
भूमि विषैं कंटक नहीं, हर्षमयी सब सृष्टि ॥ ११
धर्मचक्र आगे रहै, पुनि वसु मंगल सार।
अतिशय श्रीअरहंत के, ये चौतीस प्रकार ॥ १२

अर्थ—१ भगवान की अर्द्ध मागधी भाषा का होना, २ समस्त जीवों में परस्पर मित्रता होना, ३ दिशाओं का निर्मल होना, ४ आकाश का निर्मल होना, ५ सब ऋतु के फल-पुष्प धान्यादिकका

एक ही समय फलना, ६ एक योजन तक की पृथ्वी का दर्पणवत् निमल होना, ७ चलते समय भगवानके चरण कमलके तले सुवर्ण कमल का होना, ८ आकाश में जयजय ध्वनि का होना, ९ मन्द सुगन्धित पवन का चलना, १० सुगन्धमय जल की वृष्ठि होना, ११ पवनकुमार देवों के द्वारा भूमि का कण्टक रहित होना, १२ क्षतस्त जीवों का आनन्दमय होना, १३ भगवान के आगे धर्मचक्र का चलना, १४ छत्र, चमर, ध्वजा घन्टादि अष्ट मगल द्रव्यो का साथ रहना । इस प्रकार सब मिलकर ३४ अतिशय अरहन्त भगवान के होते है ।

तरु अशोक के निकट में, सिंहासन छबिदार ।
तीन छत्र सिर पर लसैं, भामण्डल पिछवार ।। १३
दिव्यध्वनि मुखतैं खिरै, पुष्पवृष्टि सुर होय ।
ढारैं चौसठि चमर जख, बाजैं दुन्दुभि जोय ।। १४

अर्थ—१ अशोक वृक्ष का होना, २ रत्नमय सिंहासन, ३ भगवान के सिर पर तीन छत्र का फिरना, ४ भगवान् के पीछे भामण्डल का होना, ५ भगवान के मुख से दिव्यध्वनि का होना, ६ देवताओ के द्वारा पुष्पवृष्टि का होना, ७ यक्षदेवो द्वारा चौसठ चंवरों का ढुरना, ८ दुन्दुभि बाजो का बजना, ये आठ प्रातिहार्य हैं ।

(चार अनन्त चतुष्टय)

ज्ञान अनन्त अनन्त सुख, दरस अनन्त प्रमान ।
बल अनंत अरहंत सो, इष्टदेव पहिचान ।। १५

अर्थ—१ अनन्त दर्शन, २ अनन्त ज्ञान, ३ अनन्त सुख, ४ अनन्तवीर्य ।

जिसमें इतने गुण हों, वह अरहन्त परमेष्ठी है ।

जनम जरा तिरषा छुधा, विस्मय आरत खेद।
रोग शोक मद मोह भय, निद्रा चिंता स्वेद ॥ १६

रागद्वेष अरु मरण जुत, यह अष्टादश दोष।
नाहिं होत अरहंत के, सो छबि लायक मोष ॥ १७

अर्थ—१ जन्म, २ जरा, ३ तृषा, ४ क्षुधा, ५ आश्चर्य, ६ अरति (पीड़ा), ७ खेद (दुःख), ८ रोग, ९ शोक, १० मद, ११ मोह, १२ भय, १३ निद्रा, १४ चिंता, १५ पसीना, १६ राग, १७ द्वेष, १८ मरण, ये १८ दोष अरहत भगवान के नही होते।

समकित दरशन ज्ञान, अगुरलघू अवगाहना।
सूक्ष्म वीरजवान, निराबाध गुन सिद्धके ॥ १८

अर्थ—१ सम्यक्त्व, २ दर्शन, ३ ज्ञान, ४ अगुरुलघुत्व, ५ अवगाहनत्व, ६ सूक्ष्मत्व, ७ अनन्तवीर्य, ८ अव्याबाधत्व ये सिद्धों के ८ मूलगुण होते है।

द्वादश तप दश धर्मजुत, पालैं पञ्चाचार।
षट आवश्यक गुप्ति त्रय, आचारज पदसार ॥ १९

अर्थ—१२ तप, १० धर्म, ५ आचार, ६ आवश्यक, ३ गुप्ति ये आचार्य महाराज के ३६ मूलगुण होते हैं। अब इनको भिन्न२ कहते हैं।

अनशन ऊनोदर करैं, व्रतसंख्या रस छोर।
विविक्तशयन आशन धरैं, काय कलेश सुठोर ॥२०

प्रायश्चित धर विनयजुत, वैय्यात्रत स्वाध्याय।
पुनि उत्सर्ग विचारकै, धरैं ध्यान मन लाय ॥२१

अर्थ—१ अनशन, २ ऊनोदर, ३ व्रत परिसंख्यान, ४ रस परित्याग, ५ विवित्तशय्यासन, ६ कायक्लेश ७ प्रायश्चित लेना, ८ पाँच प्रकार का विनय करना, ६ वैयाव्रत करना, १० स्वाध्याय करना, ११ व्युत्सर्ग (शरीर से ममत्व छोड़ना) १२ ध्यान करना, ये बारह प्रकार के तप हैं।

छिमा मारदव आरजव, सत्य वचन चित पाग।
संजम तप त्यागी सरव, आकिंचन तिय त्याग॥ २२

अर्थ—१ उत्तम क्षमा, २ मार्दव, ३ आर्जव, ४ सत्य, ५ शौच ६ सयम, ७ तप, ८ त्याग, ९ आकिंचन, १० ब्रह्मचर्य—ये दस प्रकार के धर्म है।

समता धर वंदन करैं, नाना थुती बनाय।
प्रतिक्रमण स्वाध्याय जुत, कायोत्सर्ग लगाय॥ २३

अर्थ—१ समता (समस्त जीवों से समता भाव रखना) २ वन्दना, ३ स्तुति (पंच परमेष्ठी की स्तुति), करना, ४ प्रतिक्रमण (लगे हुए दोषों पर पश्चाताप) करना, ५ स्वाध्याय और ६ कायोत्सर्ग (ध्यान) करना—ये छह आवश्यक हैं।

दरशन ज्ञान चारित्र तप, वीरज पञ्चाचार।
गोपे मनवचकाय को, गिन छत्तीस गुन सार॥ २४

अर्थ—१ दर्शनाचार, २ ज्ञानाचार, ३ चारित्राचार, ४ तपाचार, ५ वीर्य्याचार, १ मनोगुप्ति (मन को वश में करना), २ वचन गुप्ति (वचन को वश में करना), ३ कायगुप्ति (शरीर को वश में करना), इस प्रकार सब मिलाकर आचार्य के ३६ मूल गुण हैं।

चौदह पूरब को धरें, ग्यारह अङ्ग सुज्ञान ।
उपाध्याय पच्चीस गुण, पढ़ैं पढ़ावैं ज्ञान ॥ २५

अर्थ—११ अंग, १४ पूर्व को आप पढ़े और अन्य को पढ़ावें ये ही उपाध्याय के २५ गुण है ।

प्रथमहि आचारांग गनि, दूजो सूत्र कृतांग ।
ठाण अंग तीजो सुभग, चौथो समवायाँग ॥ २६
व्याख्या प्रज्ञप्ति पञ्चमो, ज्ञातृ-कथा षट आन ।
पुनि उपासकाध्ययन है, अन्तःकृत दश ठान ॥ २७
अनुत्तरण उत्पाद दश, सूत्र विपाक पिछान ।
बहुरि प्रश्नव्याकरण जुत, ग्यारह अंग प्रमान ॥ २८

अर्थ—१ आचाराग, २ सूत्रकृतांग, ३ स्थानाग, ४ समवायाग, ५ व्याख्याप्रज्ञप्ति, ६ ज्ञातृकथांग, ७ उपासकाध्ययनाग, ८, अन्तःकृतदशांग, ९ अनुत्तरोत्पाददशाग, १० प्रश्नव्याकरणांग ११ विपाकसूत्राग—ये ग्यारह अग हैं ।

उत्पादपूर्व अग्रायणी, तीजा वीरजवाद ।
अस्ति नास्ति परवाद पुनि, पञ्चम ज्ञानप्रवाद ॥ २९
छट्ठो कर्मप्रवाद है, सतप्रवाद पहिचान ।
अष्टम आत्मप्रवाद पुनि, नवमों प्रत्याख्यान ॥ ३०
विद्यानुवाद पूरव दशम, पूर्व कल्याण महन्त ।
प्राणवाद किरिया बहुल, लोकबिन्दु है अन्त ॥ ३१

अर्थ—१ उत्पाद पूर्व, २ अग्रायणि पूर्व, ३ वीर्यानुवाद पूर्व, ४ अस्तिनास्ति प्रवाद पूर्व, ५ ज्ञानप्रवाद पूर्व, ६ कर्मप्रवाद पूर्व, ७ सत्प्रवाद पूर्व, ८ आत्मप्रवाद पूर्व, ९ प्रत्याख्यानप्रवाद पूर्व, १० विद्यानुवाद पूर्व, ११ कल्याणवाद पूर्व, १२ प्राणानुवाद पूर्व, १३ क्रियाविशाल पूर्व, १४ लोक विन्दु पूर्व—ये १४ पूर्व है।

हिंसा अनृत तस्करी, अब्रह्म परिग्रह पाय ।
मन वच तनतैं त्यागवो, पंच महाव्रत थाय ॥३२

अर्थ—१ अहिंसा महाव्रत, २ सत्य महाव्रत, ३ अचौर्य महाव्रत, ४ ब्रह्मचर्य महाव्रत, ५ परिग्रह त्याग—ये पाच महाव्रत है।

ईर्य्या भाषा एषणा, पुनि क्षेपन आदान ।
प्रतिष्ठापनायुत क्रिया, पांचों समिति विधान ॥३३

अर्थ—१ इर्य्या, २ भाषा, ३ एषणा, ४ आदाननिक्षेपण, ५ प्रतिष्ठापना—ये पाच समिति है।

सपरस रसना नासिका, नयन श्रोत का रोध ।
षट आवशि मंजन तजन, शयन भूमि को शोध ॥३४

अर्थ—१ स्पर्शन (त्वक्), २ रसना, ३ घ्राण, ४ चक्षु और ५ श्रोत—इन पाच इन्द्रियो का वश करना सो इन्द्रिय दमन है।

वस्त्र त्याग कचलोंच अरु, लघु भोजन इक बार ।
दांतन मुख में ना करें, ठाड़े लेहिं आहार ॥३५

अर्थ—१ यावज्जीव स्नान का त्याग, २ शोधकर (देखभाल कर) भूमि पर सोना, ३ वस्त्रत्याग दिगम्बर होना, ४ केशों का लोंच करना, ५ एक वार लघु भोजन करना, ६ दन्तधावन

नही करना, ७ खड़े खड़े आहार लेना--इन सात गुणों सहित २८ मूलगुण मुनियों के होते हैं ।

साधर्मी भवि पढ़न को, इष्ट छत्तीसी ग्रन्थ ।

अल्पबुद्धि बुधजन रच्यो, हितमित शिवपुर पंथ ।। ३६

महाकवि "बुधजनजी" अपनी लघुता दिखाते हुए कहते हैं कि यह "इष्ट छत्तीसी" ग्रन्थ साधर्मी भव्य जनों के लिए सच्चा ढहतेपी मोक्ष को रास्ता बताने के लिये बनाई है ।

इति पंच परमेष्ठी के १४३ गुणों का वर्णन समाप्त ।

भजन

पायो आज मैं प्रभु दरशन सुखकार ।। टेक

प्रभु तोरो दरशन है अति सुखकार ।
दरशन करके मन में आई कबहुँ न छोड़ूं लार ।।
प्रभु दरशन से अति सुख उपजत, तत्छिन करे भव पार ।
दुख ही दुख हरता, सुख ही सुख करता, 'मोहन' प्राणाधार ।

भजन

पूजन रचाऊं जी, पूजा फल पाऊँ, तुम पद चाहुं जी ।। टेक
निर्मल नीर धार त्रय देकर, चन्दन चरन चरचाऊं जी ।
उत्तम तंदुल पुंज बनाकर, पुष्प चढ़ाऊं जी ।। पूजन०
नाना रस नैवेद्य चढ़ाऊँ, दीपक ज्योति जलाऊँजी ।
धूप अनंग मदन संग खेऊँ, फल अर्घ धराऊँ जी ।। पूजन०
अष्ट द्रव्य से अर्घ बनाऊँ, नाच नाच गुण गाऊँजी ।
कहत 'बुद्ध महाचन्द' कर जोड़्यां, तुम पद चाहूँजी ।। पूजन०

अर्थ—हे परमात्मन् ! मैं आपकी पूजा की रचना करता हूँ, प्रभो ! मुझे पूजन का फल प्राप्त हो । मैं तुम्हारे परमात्म पद की चाह रखता हूँ । निर्मल नीर की त्रिधारा से अभिषेक कर आपके चरणों को चन्दन से चर्चित कर रहा हूँ । उज्ज्वल चावल के पुञ्ज और पुष्प आपको समर्पित करता हूँ । नाना प्रकार के रसों से मिले हुए नैवेद्य चढ़ाकर दीपक का प्रकाश जगा रहा हूं । कामदेव के मद से मिली हुई धूप अग्नि में डालकर फल भेट कर कर रहा हू । हे भगवन् ! इस प्रकार अष्ट द्रव्यो से आपकी उपासना करते हुए तथा प्रसन्न मन होकर नाच करते हुए मैं आपके गुणों का गान करता हूँ । कवि श्री 'बुध महाचन्द' जी हाथ जोड़ कर बार बार प्रार्थना करते हैं कि हे नाथ ! मैं अनन्त सुख की वांछा करता हूँ ।

पंडित दौलतरामजी एक बड़े उच्च कोटि के जैन कवि हुए हैं आपने छः ढाला जैसी कविता लिखी है तथा बहुत से भजन आदि रचे है आपके भजनों में सार भरा है जरा भक्ति देखिये भगवान से किस प्रकार हट करते हैं :—

भजन

नाथ मोहि तारत क्यों ना, क्या तकसीर हमारी ॥ टेक
अंजन चोर महा अघ करता, सप्त व्यसन का धारी ।
वोही मर सुरलोक गयो है, वाकी कछु न विचारी ॥ नाथ
शूकर सिंह नकुल वानर से, कौन कौन व्रत धारी ।
तिनकी करनी कछु न विचारी, वे भी भये सुर भारी ॥ नाथ
अष्ट कर्म बैरी पूरव के, इन मो करी खुवारी ।
दर्शन ज्ञान रतन हर लीने, दीने महा दुख भारी ॥ नाथ
अवगुण माफ करे प्रभु सबके, सबकी सुधि न बिसारी ।
'दौलत' दास खड़ा कर जोड़े, तुम दाता मैं भिखारी ॥ नाथ

अर्थ—हे नाथ ! मेरी क्या भूल हो गई है, मुझको क्यों नही पार लगाते हो ।

अञ्जन चोर जो कि सातों व्यसन सेवन करता था और महापापी था, उसकी आपने कुछ भी नही विचारो, वह भी आपकी पूजा भक्ति से स्वर्ग में चला गया ।

हे प्रभु ! शेर, सूअर, नेवला और बन्दर जैसे जानवर भी आपके आहार दान की केवल अनुमोदना करने से स्वर्ग में चले गये उनकी भी कुछ नही विचारी ।

हे नाथ ! आठ कर्म मेरे पिछले जन्म के वैरी है इन्होने मेरी दुर्दशा करी हुई है। दर्शन, ज्ञान और चारित्र जैसे हीरे मेरे ले लिए है और बड़ा दुख दिया है।

हे भगवन् ! आपने बहुतसो के अवगुणों को नही देखते हुए जरासी भक्ति के कारण पार लगा दिया । 'दौलतरामजी' हाथ जोड़कर भगवान के सामने खड़े होकर कहते हैं कि आप बड़े दानी है और मैं भिखारी हूं । मुझको भी पार लगादो ।

भजन

नाथ तेरी पूजन को फल पायो
मोहे निश्चय अब ये आयो ॥ टेक

मैंडक कमल पाखड़ी मुंह में, वीर जिनेश्वर धायो ।
श्रेणिक गज के पग तले मुओ, तुरत स्वर्ग पद पायो ॥ १
मैंनासुन्दरी शुद्ध मन सेती, सिद्धचक्र गुन गायो ।
अपने पति का कोढ मिटायो, गन्धोदक फल पायो ॥ २
अष्टापद में भरत नरेश्वर, आदिनाथ मन लायो ।
अष्ट द्रव्य से पूजा कीनी, अवधिज्ञान दरसायो ॥ ३
अंजन से सब पापी तारे, मोरा जिया हुलसायो ।
महिमा मोटी नाथ तिहारी, मुक्तिपुरी सुख पायो ॥ ४
थकी थकी हारे सुरपति नरपति, आगम सीख बतायो ।
देवेन्द्रकीर्ति गुण ज्ञान मनोहर, पूजा ज्ञान बतायो ॥ ५

भजन

मुझे है चाव दर्शन का निहारोगे तो क्या होगा ।। टेक

सुना तुम नाभि के नंदन परम सुख देन जग बन्दन ।
मेरी विनती अपावन की विचारोगे तो क्या होगा ।। १
फँसा हूँ करम के फन्दे मुझे तुम क्यों छुड़ावो ना ।
तुम ही दातार हो जग के सुधारोगे तो क्या होगा ।। २
अरज सुन लीजिये मेरी, करूं विनती प्रभू तुम से ।
'नवल' को जग के दुःखों से छुड़ादोगे तो क्या होगा ।।३

भजन

मेरा मन प्रभु ही नाम रटे रे ।। टेक

प्रभु नाम जप कीजे प्राणी, कोटिक पाप कटे रे ।। १
जन्म जनम के कर्म पुराने, नाम ही लेत हटे रे ।। २
कनक कटोरे अमृत भरियो, पीवत कौन नटे रे ।। ३
'मोहन' के अरहंत भव नाशी, तन मन ताहे पटे रे ।। ४

भजन

प्रभु तुम लख मम चित हरषायो ।। टेक

सुन्दर चिन्तामणि रत्न अमोलक, रंक पुरुष जिमि पायो ।
निर्मल रूप भयो अब मेरो, भक्ति नदी जल न्हायो ।
'भागचन्द' अब मम करतल से, अविचल शिवतल आयो ।

आज कल के विद्यार्थियों के प्रति ❋

प्रभु नाम जपन क्यों छोड़ दिया,
अरहंत जपन क्यों छोड़ दिया ॥ टेक

झूठ नहीं छोड़ा क्रोध नहीं छोड़ा।
सत्य वचन क्यों छोड़ दिया ॥
मद्य नहीं छोड़ा मधु नहीं छोड़ा ।
मन्दिर जाना क्यों छोड़ दिया ?
जिस दर्शन से अति सुख उपजत ।
उस दर्शन को छोड़ दिया ॥
जो जिनवाणी धरम प्रगटावे ।
उसका अध्ययन क्यों छोड़ दिया !
झूठे गुरु पर जी ललचा कर ।
सत्य गुरु को छोड़ दिया ॥
कोड़ी को तो खूब संभाला ।
रत्न त्रय क्यों छोड़ दिया ?
दिन ही में भोजन करना ।
और छानकर पानी पीना ।
ये जो निशानी जैनों की थी ।
'मोहन' इसको छोड़ दिया ?

मुद्रक—इण्डिया प्रिन्टर्स, देहली

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	१	नेजिन्द्र	जिनेन्द्र
३	११	गुणार्णवाय	गुणाश्राय
४	१३	भवेच्चंक्र	भवेश्यक्र
८	अंतिम	जनन्त	अनन्त
९	”	स्वाधान	स्वाधीन
११	१८	त्रैलाक	त्रैलोक
१२	४	अ त	अति
१२	७	त	तहं
१३	६	श्रत	श्रुत
”	८	बज्जिया	वज्जियो
”	१०	गज्जिय	गज्जियो
१७	१५	भाव	जीव
”	२२	अवित्र	अपवित्र
२४	७	साजे	ताजे
३०	१४	मिलकर	मिलाकर
३१	७	चउकर्म कि	कर्मन की
३३	१८	छ डना	छोड़ना
३८	१	ती ङ्करों	तीर्थंकरों
”	१३	”	”
३९	७	नाय	नाय पुष्पं
४३	९	घम	धर्म
”	१४	स	से
४५	४	वहे	कहे
”	१९	इन्द्वनि	इन्द्रनि
४७	३	परमीश	परमेश
”	अन्तिम	इ त	इति

		अशुद्ध	शुद्ध
	५	सखदायक	सुखदायक
	२	तवनुात	तनुवात
	६	कक्षक	कलक
६९	२०	पाश्वनाथ	पार्श्वनाथ
७२	३	मव	भव
७८	२०	अनिघर	असनिघर
७९	१	याले	वाले
,,	१७	णीव	जीव
,,	१९	जातने	जीतने
८०	१	गरीबों	गरीबी
,,	१५	गाकर	लगाकर
८२	५	नप	पन
८३	१९	वृन्दावनजा	वृन्दावनजी
८४	११	कलाश	कैलाश
८६	२	कषते	करते
,,	७	१००८	१०८
,,	१४	कत	कर्ता
८८	६	कम	कर्म
९३	१०	वस अतिशय	दस अतिशय
९४	१३	जख	यक्ष
९७	७	षञ्चमो	पञ्चमो
९९	७	ढहतेपी मोक्षको	हितेषी मोक्षका
१०१	६	माथ	नाथ
,,	११	कमं	कर्म
,,	१७	आर	और
१०२	१८	भहिमा	महिमा